हमारे कुछ अनमोल प्रकाशन

पुस्तक	लेखक	मूल्य
समय की प्रगति	कैथेराइन वी. शिप्पैन	२।)
पद्मसिंह शर्मा के पत्र	बनारसीदास चतुर्वेदी तथा हरिशंकर शर्मा	६)
पत्र-लेखन कला	बनारसीदास चतुर्वेदी	।।)
आदर्श पत्र-लेखन	यज्ञदत्त शर्मा	७।।)
आदर्श भाषण-कला	यज्ञदत्त शर्मा	७।।)
प्रबन्ध-सागर	यज्ञदत्त शर्मा	५।।)
रूसी लोक-साहित्य	वार राजेन्द्र ऋषि	४)
जिप्सी (पुश्किन)	अनुवादक—वीर राजेन्द्र ऋषि	२)
भारत का चित्रमय इतिहास	महावीर अधिकारी	६)
नेपाल की कहानी (सचित्र)	काशीप्रसाद श्रीवास्तव	८)
प्राचीन भारतीय परम्परा और इतिहास	डा० रांगेय राघव	१२)
रजवाड़ा (सचित्र)	देवेश दास	५)
पृथ्वी-परिक्रमा (सचित्र)	गोविन्ददास	१२)
चम्पारन में महात्मा गांधी (सचित्र)	डा० राजेन्द्रप्रसाद	५)
भारत में ब्रिटिश साम्राज्य का उदय और अस्त (१)	इन्द्र विद्यावाचस्पति	७)
भारत का वैधानिक एवं राष्ट्रीय विकास	गुरुमुख निहालसिंह	१०)
भारतीय राजनीति और शासन	के. आर. बम्बवाल	८।।)
राजनीति शास्त्र के मूल सिद्धान्त	योगेन्द्रकुमार मल्लिक	६)
नागरिक-शास्त्र के सिद्धान्त (१९५६)	के० आर० बम्बवाल	५)
भारत का सचित्र संविधान	प्रो० इन्द्र	२)
प्रेमचन्द : घर में	शिवरानी देवी प्रेमचन्द	७।।)
सभा-शास्त्र	न० वि० गाडगिल	६)
अधखिली (सचित्र)	देवेश दास	४)
शिवालक की घाटियों में (सचित्र)	श्री निधि	५)
वनराज के राज में (सचित्र)	विराज, एम० ए०	४)
सचित्र गृह-विनोद	अरुण, एम० ए०	८)
सचित्र व्यंग-विनोद	अरुण, एम० ए०	६।।)

आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली-६

आधुनिक विज्ञान
और
आधुनिक मानव

लेखक

जेम्स बी० कॉनेन्ट

अनुवादक

हंसराज 'रहबर'

१९५६

आत्माराम एण्ड संस

प्रकाशक तथा पुस्तक-विक्रेता

काश्मीरी गेट

दिल्ली-६

प्रकाशक
रामलाल पुरी
आत्माराम एण्ड संस
काश्मीरी गेट, दिल्ली-६

मूल्य २)

मुद्रक
श्यामकुमार गर्ग
हिन्दी प्रिंटिंग प्रेस
क्वीन्स रोड, दिल्ली-६

प्रकाशक की ओर से

यह एक विशुद्ध वैज्ञानिक पुस्तक है और जनसाधारण के लिए लिखी गई है। इसमें विज्ञान जैसे कठिन विषय को सरल और सुबोध शैली में प्रस्तुत किया गया है। इसमें बताया गया है कि सन् १९०० से हमारे समय तक विज्ञान में क्या प्रगति हुई, और फिर इस प्रगति और नये आविष्कारों का मानव-समाज, राजनीति और दर्शन पर क्या प्रभाव पड़ा।

लेखक का मत है कि रसायन और भौतिक विज्ञान के नये-नये आविष्कार और सिद्धान्त हमारे काम को सहज और सुगम बनाते हैं और एक नई दिशा में हमारा पथ-प्रदर्शन करते हैं, लेकिन उन्हें सृष्टि को समझने का साधन बनाना भूल है। उनका मत है कि धर्म धर्म है, और विज्ञान विज्ञान। दोनों के क्षेत्रफल अलग-अलग हैं और दोनों में कोई विरोध नहीं। यह एक वैज्ञानिक का मत है। आप इससे असहमत हो सकते हैं। लेकिन विज्ञान के इस युग में यह समझने की जरूरत है कि उसकी यह धारणा कैसे बनी? इसी उद्देश्य से हमने यह पुस्तक प्रकाशित की है।

विषय-सूची

आधुनिक विज्ञान और आधुनिक मानव

एक

पिछले दस वर्ष में विज्ञान और प्राविधिक विज्ञान

पहले मैं दो शब्द इस बारे में कहना चाहता हूँ कि मैंने अपने इन चार भाषणों का नाम 'आधुनिक विज्ञान और आधुनिक मानव' क्यों रखा ? जब मुझे निमंत्रण-पत्र द्वारा सन् १९५२ ई० का बम्पटन-वक्ता[1] होने का सम्मान दिया गया तो प्रेसिडेंट आइज़नहावर ने कमेटी की ओर से मुझे लिखा कि "भौतिक विज्ञान में इधर जो प्रगति हुई है, मैं उसके महत्त्व को समझाने का प्रयत्न करूँ।" जब मैंने यह पूछा कि भाषण सुनने वाले किस श्रेणी के लोग होंगे तो मुझे विश्वास दिलाया कि पेशेवर दार्शनिक और वैज्ञानिक बिल्कुल नहीं होंगे। मुझे अगर अपनी बात राह चलते व्यक्ति से नहीं कहनी थी तो मेरे श्रोता अवश्य ही वे विद्यार्थी होंगे, जो हर साल यूनिवर्सिटी में दाखिल होते हैं और हमारे कालेजों के प्रिंसीपल उनका अभिवादन करते हुए कहते हैं कि आइये आप भी शिक्षित वर्ग में शामिल हो जाइये। यह विश्वास हो जाने के बाद कि मुझ से इस बात की आशा नहीं की जा रही कि मैं भौतिक विज्ञान का अध्यात्मवाद पर प्रभाव बताऊँ, अथवा परमाणु की भीतरी क्रिया का प्राविधिक वर्णन करूँ, मैंने धन्यवाद-सहित कोलम्बिया यूनिवर्सिटी का अतिथि-वक्ता होने का सम्मान स्वीकार कर लिया।

मुझे जो निमंत्रण मिला, उसमें यह भी छूट दे दी गई थी कि मैं

---

१. अमरीका की कोलम्बिया यूनीवर्सिटी में भाषणों का एक सिलसिला 'बम्पटन-भाषण' नाम से जैसे हमारे यहाँ किसी भाषण-माला का नाम 'गंगाराम भाषण-माला' हो। जो व्यक्ति यह भाषण देता है उसे 'बम्पटन वक्ता' कहते हैं।

अपने विषय आप चुन सकता था। अब कठिनाई यह थी कि विषय बहुत फैले हुए थे और मैं चाहता था कि उन्हें सीमित करके कुछेक ले लिये जायँ, जिन्हें इन चार भाषणों में सहज और साधारण ढंग से सुनने वालों के सामने प्रस्तुत किया जा सके। इसलिए मैंने अपने आप से पूछा कि भौतिक विज्ञान में इधर कौन-कौन से आविष्कार अथवा परिवर्तन हुए हैं, जो हमारे कालेजों और यूनीवर्सिटियों में शिक्षा पाने वाले नौजवान लड़के और लड़कियों के लिए महत्त्वपूर्ण हैं? इस प्रश्न के उठते ही दो शब्द का पुराना उत्तर सामने आ जाता है···अणु बम, और अगर आप कुछ अधिक आशावादी हैं तो जरा दूसरे रूप में अणु शक्ति। यह तय है कि किसी न किसी रूप में अणु बम का जिक्र किये बिना आज विज्ञान सम्बन्धी कोई भी भाषण करना बहुत कठिन है, और फिर उस हालत में जब कि वक्ता मेरे जैसा व्यक्ति हो जो इन हथियारों के उत्पादन से कुछ सम्बन्ध भी रखता हो। अगर परमाणु सम्बन्धी भौतिक विज्ञान की बुनियादी बातें बतानी हों अथवा अणु बम की सैनिक सम्भावनाओं पर प्रकाश डालना हो अथवा शांतिपूर्ण निर्माण में अणु शक्ति के प्रयोग से भावी उन्नति का अन्दाज लगाना हो, तो निश्चय ही सन् १९५२ के एक बम्पटन-वक्ता से यह आशा नहीं की जा सकती। इधर भौतिक विज्ञान और रसायन का जो विकास हुआ है, उसकी प्राविधिक पेचीदगियाँ कदाचित् महत्त्वपूर्ण हैं, लेकिन उनकी सिर्फ व्याख्या मात्र कर देने से वह सवाल हल नहीं होगा, जो मैंने उठाया है। प्राविधिक विज्ञान की उन्नति कोई नई बात नहीं है। जब तक कोयला और तेल मौजूद हैं, शक्ति के एक नये साधन का मालूम हो जाना भी, अगर इस बात को इंजीनियर के ठंडे दिमाग से सोचा जाय, क्रांतिकारी दिखाई नहीं जान पड़ता। अब रही युद्ध-नीति—यह एक अलग विषय है। अगर मैं इस विषय पर अपना प्रख्यात भाषण 'अणु युग में यूरोप की रक्षा का सवाल' यहाँ दोहराऊँ तो वह बिलकुल असंगत होगा।

इसलिए मैं यह बताना पसन्द करूँगा कि साइंस में सन् १९३५ से जो कुछ होरहा है, उसका सांस्कृतिक महत्त्व क्या है? और 'सांस्कृतिक' से मेरा अभिप्राय पाश्चात्य सभ्यता का तमाम सामाजिक ढाँचा है। उत्पा-

दन, विवरण और यातायात के जो साधन हैं, मैं उनसे कुछ आगे जाना चाहता हूँ। मैं अपने इन भाषणों में यह बताने का प्रयत्न करूँगा कि आधुनिक जनतंत्र के एक साधारण पढ़े-लिखे व्यक्ति की मनोगत भावनाओं, आशाओं, अभिलाषाओं और उसकी दार्शनिक प्रवृत्तियों और सांसारिक दृष्टिकोण को आधुनिक विज्ञान ने कैसे प्रभावित किया है। सारांश यह कि मैं भौतिक-विज्ञान और दर्शन का आपसी सम्बन्ध बताऊँगा। और इसमें भी मेरी कोशिश यह होगी कि इन दोनों विषयों को बहुत ही सरल और सुबोध भाषा में आप लोगों के सामने रखा जाय और उन पर एक अत्यन्त उद्विग्न आधुनिक मानव की दृष्टि से विचार किया जाय।

पिछले दस साल और उससे कुछ अधिक काल में विज्ञान और वैज्ञानिकों के प्रति अमरीकी नागरिक का रवैया बिलकुल बदल गया है। मैंने अपने इस पहले भाषण में इसी बात को स्पष्ट किया है। मैंने अभी-अभी आधुनिक मानव को 'अत्यन्त पीड़ित' कहा है। मेरा ख्याल है कि अधिकांश लोग इस बात से सहमत हैं और इसमें कुछ भी अतिशयोक्ति नहीं है। अब अगर हम यह सोचें कि आधुनिक मानव उद्विग्न क्यों है तो पता चलेगा कि आधुनिक शस्त्रों का भयानक रूप, दुनियाँ का दो टूक विभाजन और अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति में स्थायी तनातनी ही एक समझदार नागरिक को परेशान रखती है। यही बातें उसके भय और शंका का मूल कारण हैं। विज्ञान के प्रति आधुनिक मानव का जो रवैया तबदील हुआ है, वह बुनियादी तौर पर अणुबम के भय के कारण हुआ है। लेकिन वह अपने इस भय को अपने समूचे जीवन में—अपने रहन-सहन और सोच-विचार में अत्यन्त आश्चर्यजनक ढंग से व्यक्त करता है। उसका यह भय इतना बढ़ गया है कि अगर दस-पन्द्रह साल बाद आपस की बातचीत से अन्तर्राष्ट्रीय तनातनी बहुत कम हो जाय, और मुझे आशा है कि अवश्य कम होगी, तो भी समाज और विज्ञान के पुराने सम्बन्ध उससे आप ही आप स्थापित नहीं होंगे। अगर मेरे मन की बात पूछी जाय तो मैं चाहता हूँ कि वे सम्बन्ध फिर से स्थापित हों। मैं अणु-युग और मानव संस्कृति पर उसके कुप्रभावों को पसन्द नहीं करता। हमारे युग की आध्यात्मक समस्या यह है कि हम उदारता और समझदारी से

अपने आपको भौतिक विज्ञान के नये विकास के अनुरूप ढालना सीखें। इस लिए मुझे जो कुछ कहना है अगर आप लोग उसे ध्यान से सुनना चाहते हैं और उससे उचित लाभ उठाना चाहते हैं तो आप यह भय और इस भय सम्बन्धी यह सारी जानकारी अपने मन से निकाल दें कि हम एक ऐसे शक्तिशाली शत्रु से घिरे हुए हैं जो हर साल ढेरों अणु बम तैयार कर रहा है और उन बमों को हम पर गिराने के अपने साधन भी बढ़ा रहा है।

अब अगर आपने युद्ध और विध्वंस के सारे विचार भुला दिये हैं तो आगे चलिए और अणु बम के बारे में जनसाधारण की जो प्रतिक्रिया है, उसकी तुलना जनसाधारण की उस प्रतिक्रिया से कीजिये, जो भाप के इंजिन, बिजली के प्रकाश, मोटर, टेलीफोन, पैट्रोलगाड़ी और हवाई ज़हाज अथवा हमारे अपने युग में रेडियो और टैलीविज़न के बारे में है। मेरा इतिहास का अध्ययन मुझे बताता है कि आधुनिक विज्ञान चलने और बोलने की अवस्था को लगभग सन् १७०० में प्राप्त हुआ और सिर्फ १७८० के आसपास बालिग होना शुरू हुआ। इसलिए विज्ञान और आविष्कारों के कारण समाज में जो परिवर्तन हुए उनके बारे में हमारी जानकारी अठारहवीं सदी की औद्योगिक क्रांति से अधिक पुरानी नहीं है। थॉमस जाफर्सन ने वर्जीनया यूनिवर्सिटी के कमिश्नरों के प्रधान की हैसियत से सन् १८१८ में जो एक लेख लिखा था, उससे भी यही सिद्ध होता है कि हमारी यह जानकारी इतनी ही पुरानी है। उन्होंने लिखा था—"एकमात्र सिद्धान्त यह है कि हर नई पीढ़ी को अपने से पहले की पीढ़ी का ज्ञान और अनुभव विरासत में प्राप्त होता है, जिसे वह अपने प्रयत्नों और आविष्कारों से आगे बढ़ाती है और अपने से बाद में आने वाली पीढ़ी को सौंप जाती है। यों मानव-ज्ञान और अनुभव सदियों से एकत्रित होता और बढ़ता चला आया है। जैसा कि कुछ लोगों का ख्याल है यह अनन्त और असीम कभी नहीं होगा, लेकिन बढ़ता रहा है और बढ़ता रहेगा। कितना और कहाँ तक बढ़ेगा, यह पहले से कोई नहीं कह सकता।" अब लेख का महत्त्वपूर्ण भाग आता है, "वास्तव में हमें आधी सदी पीछे लौटकर उस समय पर नजर डालने की जरूरत है; जिसके बहुत से लोग अब भी जीवित हैं और जिन्हें सारी बातें अच्छी

तरह याद हैं, इस युग में विज्ञान और कला की जो आश्चर्यजनक उन्नति हुई, हमें उसे देखना है। विज्ञान की इस उन्नति के कारण मनुष्य ने प्राकृतिक शक्तियों को अपना दास बनाया, उन्हें अपने काम में लाकर अपने श्रम को हलका किया और वे चमत्कार कर दिखाये जो पहले उसकी सामर्थ्य से बाहर थे। वह अब जीवन की सुख-सामग्री को उन लोगों तक पहुँचाने में सफल हो गया है, जिन्होंने अब तक इस सामग्री के सिर्फ स्वप्न ही देखे थे। सचमुच मनुष्य ने अब तक जो स्वप्न देखे थे, वे उसकी आँखों के सामने सदेह और साकार हो गये।"

जाफर्सन के समय से पश्चिम की प्रत्येक पीढ़ी ने ऐसी ही प्रशंसा और आशा की भावनाएँ व्यक्त कीं। लेकिन उन्नीसवीं सदी में यह भावनाएँ आम तौर पर वैज्ञानिकों के प्रति नहीं, आविष्कार करने वालों के प्रति व्यक्त की जाती थीं। अमरीका में विशेष रूप से यह बात सत्य थी और इंगलैंड में भी ऐसा ही होता था। जर्मनी एकमात्र ऐसा देश था जहाँ भौतिक वैज्ञानिक का वैज्ञानिक के रूप में सम्मान हुआ। वास्तव में हमारे जमाने में भूल का जो सुधार हुआ है, उसका कारण यह है कि सन् १६०० से विभिन्न लेखक आविष्कार के मुक़ाबले में विज्ञान का महत्त्व स्थापित करने के लिए बराबर लिख रहे थे। उन्नीसवीं सदी में आम तौर पर लोगों का ख्याल यह था कि वैज्ञानिक सिर्फ प्रकृति के कानून मालूम करता है और आविष्कार करने वाला उन कानूनों को व्यावहारिक जीवन में लागू करके उनसे लाभ पहुँचाता है। उदाहरण के लिए जेम्स क्लर्क मैक्सवेल वैज्ञानिक था, जिसने प्रकाश का बिजली चुम्बक सिद्धान्त मालूम किया। ग्राहम बेल ने इस सिद्धान्त को व्यावहारिक जीवन में लागू किया। अब जेम्स क्लर्क का बेल के प्रति जो रवैया था वह शिष्य की पीठ थपथपाने वाले गुरु का सा था। क्लर्क मैक्सवेल ने बेल का जिक्र करते हुए कहा था कि वह एक वक्ता है, जो रोटी कमाने के लिए इलैक्ट्रीशियन बन गया है। जॉन हॉपकिन्स यूनीवर्सिटी के प्रोफेसर रालैंड ने सन् १८७६ में अपने साथी वैज्ञानिकों में भाषण करते हुए कहा था—"जहाँ घास की एक पत्ती उगती है, जो व्यक्ति वहाँ दो उगाता है वह मानवता का उपकार करता है; लेकिन जो अपने प्रयत्न

से दो उगाने का सिद्धान्त मालूम करता है वह एक श्रेष्ठ और महान् बुद्धि-जीवी है और वह मानवता का और उस व्यक्ति का—दोनों का अधिक उपकार करता है।" वैज्ञानिक आविष्कार करने वाले को अपने से अधम समझता था और आविष्कार करने वाला भी वैज्ञानिक को तनिक घृणा से देखता था और व्यापारी भी प्रायः उसकी उपेक्षा करते थे, क्योंकि व्यावहारिक जीवन में वे आविष्कारकर्त्ता के समर्थक थे।

पहले विश्व-युद्ध में प्रेसिडेंट विल्सन ने नौसेना की सहायता के लिए एक परामर्श-समिति बनाई। थॉमसन एड्रिसन उसका प्रधान था। तमाम अखबारों ने इस नियुक्ति का समर्थन किया, क्योंकि नौसैनिक समस्याओं पर विज्ञान को लागू करने के लिए अब बढ़िया से बढ़िया व्यक्ति मिल सकेंगे। भौतिक वैज्ञानिक नियुक्ति इसलिए हुई थी कि दूसरे सदस्यों को चुनते समय उसने प्रधान विल्सनसे कहा था—"हमें एक गणित-शास्त्री दरकार है, क्योंकि कुछ बातों में हमें हिसाब भी लगाना होगा।"

एक उदाहरण और है जिससे मालूम होता है कि सन् १९१६ में विज्ञान और आविष्कार के प्रति आम रवैया बदल रहा था। यह बात भौतिक वैज्ञानिकों और गणितशास्त्रियों तक ही सीमित नहीं थी, रसायन वैज्ञानिक भी शामिल थे। जब अमरीका पहले विश्व-युद्ध में शामिल हुआ तो अमरीकन कैमिस्ट सोसायटी का एक प्रतिनिधि युद्ध मन्त्री न्यूटन बेकर से मिला और युद्ध में कैमिस्टों की सेवाएँ अर्पित कीं। युद्ध मन्त्री ने उसका धन्यवाद किया और कहा कि आप कल आइये। जब वह अगले दिन आया तो युद्ध मन्त्री ने कैमिस्टों को फिर धन्यवाद दिया और उसे बताया कि इसकी हमें इसलिए आवश्यकता नहीं कि युद्ध-विभाग में पहले ही एक कैमिस्ट काम कर रहा है।

सन् १९४० में स्थिति एकदम बदल चुकी थी। अब विज्ञान उद्योग का एक अङ्ग बन चुका था और तनिक देर से अमरीका में भी उद्योग विज्ञान का अङ्ग बन गया। बिजली, रसायन और औषधि सम्बन्धी उद्योग इस दिशा में नेतृत्व कर रहे थे। जनरल इलैक्ट्रिक कम्पनी की अनुसंधान प्रयोगशाला, बेल टेलीफोन लेबोरेटरी और डूपौंट कम्पनी उदा-हरण के रूप में पेश किये जा सकते हैं। इसलिए जब दूसरे विश्व-युद्ध

में प्राविधिक वैज्ञानिकों को फ़ौजी सहायता के लिए भर्त्ती करने का सवाल उठा तो सरकार ने वैज्ञानिकों को वैज्ञानिकों के रूप में बुलाया।

मैंने पिछले चालीस वर्ष का इतिहास बहुत ही संक्षेप में कह दिया है। नेशनल रिसर्च कौंसिल पहले विश्व-युद्ध में स्थापित हुई थी और उसके स्थापित होने से विज्ञान और राष्ट्रीय सरकार में निकट सम्बन्ध की बुनियाद पड़ गई। वास्तव में नेशनल अकादमी आफ साइंस कांग्रेस ने गृह-युद्ध के दिनों में स्थापित की थी। विज्ञान हमारे देश में कभी भी अछूता नहीं था, लेकिन सन् १९१७ तक लोगों की आम धारणा यह थी कि प्राविधिक विज्ञान का विकास वैज्ञानिक के कारण नहीं, आविष्कारकर्त्ता के कारण हो रहा है, वह वही व्यक्ति है जो हमारे स्वभाव को बदल रहा है और हमारे जीवन के लिए नये सुख सम्भव बना रहा है। दूसरे शब्दों में आविष्कारक ने प्रकृति पर विजय पाई है और वह उसे मनुष्य के लिए प्रयोग में ला रहा है।

पहले विश्व-युद्ध के अन्त से दूसरे विश्व-युद्ध के आरम्भ तक अमरीका में उद्योग और विज्ञान का आपसी सम्बन्ध बड़ी तेज़ी से बदल रहा था। बहुत से उद्योगपति जो बात पहले से जानते थे, परमाणु बम की उत्पत्ति से वह आम लोगों पर भी प्रकट हो गई अर्थात् वैज्ञानिक अब आविष्कारकर्त्ता बन गये हैं। यह सच है कि बहुत से वैज्ञानिकों ने, मैं वैज्ञानिक शब्द पर विशेष ज़ोर दे रहा हूँ, उस उन्नति में भाग लिया है, जिसके कारण नये और असाधारण शस्त्र बने हैं और जिसके कारण न सिर्फ अमरीका बल्कि दुनिया भर में भावी औद्योगिक क्रान्ति की आशायें उत्पन्न हो गई हैं, परिवर्तन पूर्ण था। वैज्ञानिक को अब ऐसा व्यक्ति नहीं समझा जाता था, जो स्वप्न-लोक में रहता है और अपने आध्यात्मिक संतोष के लिए धीरे-धीरे प्रकृति के रहस्यों का उद्घाटन करता है बल्कि अब वह वाट और एडीसन के सदृश चमत्कार करने वाला व्यक्ति था जो मनुष्य और उसकी भौतिक परिस्थितियों के सम्बन्धों में महान् परिवर्तन ला सकता था।

मेरा ख्याल है कि वैज्ञानिक की स्थिति में यह जो परिवर्तन आया

पिछले दस साल के बड़े परिवर्तनों में इसका एक विशेष महत्त्व है। दूसरा परिवर्तन यह कि संगठित समाज अर्थात् सरकार से बहुत से वैज्ञानिकों का सम्बन्ध बदल गया है। विज्ञान और समाज में जो पेचीदा सम्बन्ध हैं, परमाणु बम के पहले विस्फोट ने उन्हें विचित्र और महत्त्वपूर्ण भी बना दिया है। निश्चय ही इसका पहला कारण तो यह है कि परमाणु बम एक बहुत ही जबर्दस्त फौजी हथियार है और दूसरा कारण मेरे ख्याल में आइन्स्टीन के प्रसिद्ध समीकरण[1] के भौतिक परिणाम हैं। मेरे लिए विशेष महत्त्व की बात यह है कि सन् १९४० से सन् १९४५ तक विशेषज्ञों की एक पूरी फौज एक ओर तो विज्ञान को आश्चर्यपूर्ण ढंग से आगे बढ़ाने में व्यस्त थी और दूसरी ओर एक जबर्दस्त फौजी हथियार तैयार कर रही थी। उनके इस दोहरे काम से जो नई सामाजिक स्थिति उत्पन्न हुई, हम अभी तक उसके नतीजों को समझने का प्रयत्न कर रहे हैं।

अपनी बात को अधिक स्पष्ट करने के लिए मैं आपके सामने दो उदाहरण रखूंगा, जिनका मुझे व्यक्तिगत अनुभव प्राप्त है। उनमें से एक जहरीली 'गैस' है जो पहले विश्व-युद्ध में तैयार हुई और दूसरे परमाणु बम की उत्पत्ति है। जहाँ तक पहले उदाहरण का सम्बन्ध है अगर गैस उतना प्रभावशाली शस्त्र भी सिद्ध होती जितना कि हम उससे आशा रखते थे तो भी सन् १९१७-१८ में राजयान पर इसका असर कुछ अधिक महत्त्वपूर्ण न होता। क्यों? क्योंकि सन् १९४५ तक युद्ध के और भी जितने कामों में विज्ञान का प्रयोग हुआ था उसका प्राविधिक क्षेत्र इतना थोड़ा था कि उसे सहज में सीमित किया जा सकता था। वास्तव में बाद में पशुओं पर जितने भी प्रयोग किये उनसे सिद्ध हुआ कि 'गैस की शक्ति संदिग्ध' है, लेकिन अगर उसमें उतने ही भयंकर गुण होते जितने कि हम उस समय समझते अर्थात् उसकी घातक शक्ति बहुत ही अधिक होती, वह समस्त आवरणों को फाड़ सकती, उसमें किसी प्रकार की गंध न होती और स्थिर रह सकती—तब भी यह आविष्कार उन्नीसवीं सदी

१. E=mc.

के शांतिपूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय वैज्ञानिक ढाँचे में सीमित रह सकता था। अल-वत्ता अगर इस नर्म 'गैस' को मालूम करते समय कुछ नये रासायनिक तत्त्व मालूम किये होते तब युद्ध में विज्ञान के इस प्रयोग से बड़ी भारी तब्दीली आती और विज्ञान के प्रति समाज का रवैया वदल जाता।

रासायनिक युद्ध, उद्‌जन वम, पानी के नीचे युद्ध, जेट, वायुयान, नई सुरंगें आदि में भौतिक विज्ञान और रसायन का वही ज्ञान और वही सिद्धान्त प्रयोग हुए थे, जिनसे जनता पहले ही भली भाँत परिचित थी। सैनिक उन्नति के सिलसिले में जो नया वैज्ञानिक ज्ञान प्राप्त हुआ। विज्ञान की उन्नति के लिए उसका कोई क्रान्तिकारी महत्त्व नहीं था। लेकिन परमाणु वम की उत्पत्ति में यह ज्ञान कितना पूर्ण हो गया। पहले इतने वड़े परिवर्त्तन की किसी ने कल्पना तक नहीं की थी। सन् १९४० में भौतिक वैज्ञानिकों के पास प्रयोगों के कुछ परिणाम थे, जिनके आधार पर वे परमाणु भौतिक विज्ञान और रसायन के वारे में सैद्धान्तिक विचार रखते थे। इन परिणामों के आधार पर उन्होंने परमाणु वम के फटने की भविष्यवाणियाँ की थीं मगर उनकी अधिकांश भविष्यवाणियों को किसी वड़ी प्रयोगशाला में प्रयोग द्वारा सत्य सिद्ध नहीं किया जा सकता था। विज्ञान ने जो यह नया ज्ञान प्राप्त किया था इसका विकास इस बात पर निर्भर था कि टैक्स देने वालों का वहुत सा रुपया प्रयोगों पर खर्च किया जाय और सन् १९४० में यह खर्च सिर्फ इसीलिए सम्भव हो सकता था कि भयंकर विश्व-युद्ध के लिए एक भयंकर शस्त्र दरकार है। इसीलिए युद्ध की आवश्यकता के कारण विज्ञान का वहुत सा काम होने लगा। शुरू में इस काम को वैज्ञा-निकों के अभिशाप के रूप में गुप्त रखा गया।

जव युद्ध समाप्त हुआ, तो जितना गुप्त रखना सम्भव जान पड़ा उसे स्मिथ-रिपोर्ट में प्रकाशित किया गया और वाकी पर सेंसरशिप का पहरा वैठा दिया गया। ऐसी स्थिति की कठिनाइयाँ यहाँ वताने की जरूरत नहीं, क्या महत्त्वपूर्ण है और क्या नहीं है इसका निर्णय करने में जो संघर्ष हुआ उसे वताने की भी जरूरत नहीं और यह वताने की भी जरूरत नहीं कि वैज्ञानिक और सरकारी अफसर में किन-किन वातों पर

मतभेद था। जापान के हथियार डालने के तुरन्त बाद जिन लोगों ने सुरक्षा के कानून बनाये, उनकी बुद्धिमत्ता अथवा मूर्खता का फैसला अब कौन कर सकता है ? विभाजित संसार की जिस तनातनी में हम लोग इस समय जीवित रहने का प्रयत्न कर रहे हैं, इसका अन्दाजा उस वक्त बहुत कम लोग लगा सकते थे। अतीत पर एक दृष्टि डाल लेने से अब यह बात स्पष्ट हो जाती है कि विज्ञान का एक पूरा क्षेत्र दूसरों से एकदम विभिन्न है, जहाँ तक परमाणु सम्बन्धी भौतिक विज्ञान और रसायन को लागू करने का सवाल है उसे प्रत्येक औद्योगिक राष्ट्र की सरकार ने गुप्त रखा हुआ है। कम-से-कम इस मामले में विज्ञान, प्राविधिक विज्ञान और राजनीति एक दूसरे में मिल गई हैं यद्यपि इस मिलाप से जो एक भयंकर नदी बनी है वह कहीं-कहीं गँदली भी है।

अगर उन्नीसवीं सदी का कोई वैज्ञानिक धरती पर आ जाय तो आजकल जो कुछ हो रहा है, उसे देख वह चकित रह जाय। ग्लैडस्टोन ने जब बिजली की प्रारम्भिक मोटर पर आपत्ति उठाई तो मिचेन फाराडे ने अपने स्वभाव के विपरीत सनकीपन से उत्तर दिया—"किसी दिन आप इस पर टैक्स भी लगा सकते हैं।" लेकिन उसने इस बात की कल्पना तक नहीं की थी कि कभी वह समय भी आयेगा जब स्वतंत्र देश की सरकारें विज्ञान के ऐसे ही प्रारम्भिक आविष्कारों पर अपने इजारेदारी स्थापित करेंगी अथवा विज्ञान के नये विकास को प्रकट करने पर रोक लगा देंगी अर्थात् सरकार विज्ञान की पूरी उन्नति को एक राष्ट्रीय रहस्य समझेगी। अगर उसे इस स्थिति का तनिक भी आभास हो गया होता तो इससे उत्पन्न होने वाले परिणाम भी उसकी समझ में आ गये होते अर्थात् गुप्त रूप से विज्ञान सम्बन्धी जो काम हो रहा है वैज्ञानिक एक दूसरे से और जनता से उसकी चर्चा नहीं कर सकते, वैज्ञानिक और इंजीनियर नई योजनाओं पर विचार-परामर्श नहीं कर सकते और प्रत्येक वर्ष जो उन्नति हो रही है उसके महत्त्व का अनुमान नहीं हो सकता।

सैनिक और औद्योगिक उद्देश्यों के लिए अणु-शक्ति का भविष्य न सिर्फ राष्ट्र के लिए बल्कि राजनीतिज्ञों के लिए भी गौरव का विषय बन

चुका है। मास्को से ऐलान होता है कि सोवियत संघ परमाणु बम को पहाड़ हटाने के लिए इस्तेमाल कर रहा है। सम्भव है जानकारी रखने वाले कुछ लोग इन कहानियों पर विश्वास रखते हों, लेकिन रूस में कोई व्यक्ति इस मामले पर बहस नहीं कर सकता। अर्जेन्टाइना से खबर आती है कि वहाँ अणु-शक्ति के नये साधन मालूम हुए हैं। कोई विश्वास नहीं करता, कुछ लोग बहस भी करते हैं, लेकिन उस देश में कोई मन में संदेह रखते हुए भी विरोधयुक्त आवाज़ नहीं उठाता। आप कहेंगे कि यह सब इसलिए होता है कि इन देशों में डिक्टेटरों का शासन है, किसी व्यक्ति को आवाज़ उठाने का अधिकार प्राप्त नहीं, लेकिन अमरीका और ब्रिटेन में भी यही स्थिति है। हम अखबारों में औद्योगिक उद्देश्य के लिए अणु-शक्ति के प्रथम प्रयोग अथवा उसे फौजी हवाई जहाज और समुद्री जहाज बनाने के लिए इस्तेमाल की खबर पढ़ते हैं और हमें बताया जाता है कि इस दिशा में फलाँ-फलाँ उन्नति होने वाली है। एक राष्ट्र के अफसर दावा करते हैं कि हम अणु-शक्तिको कारखानों में इस्तेमाल करेंगे और दूसरे राष्ट्र के अफसर उद्जन बम बनाने की बात कहते हैं। इन सब ब्यानों के पीछे नई और महत्त्वपूर्ण बात यह है कि जिन्हें इन विषयों पर बोलने का अधिकार प्राप्त है, वे खुद कुछ नहीं कहते, क्योंकि सुरक्षा कानूनों ने उनकी जबान बन्द कर दी है। जिनमें वैज्ञानिक की योग्यता है और जो प्राविधिक बातों को समझते हैं उन्होंने चुप्पी साध ली है। इसके परिणामस्वरूप जनता को जो जानकारी प्राप्त होती है वह उन राजनीतिज्ञों के बयानों द्वारा होती है, जिन्हें खुद यह ज्ञान नहीं होता है कि वे जो भविष्यवाणी कर रहे हैं, उसमें असत्य की मात्रा कितनी है और उनके बयान में असल बात को कितना तोड़ा-मरोड़ा गया है। कई बार अर्द्ध-सत्य और अत्यन्त अस्पष्ट रिपोर्टें अखबारों में छपती हैं और यही परमाणु-शक्ति की प्रगति के बारे में जनता की जानकारी का एक आधार होती हैं। मैं जो कुछ कह रहा हूँ वह अक्षर-अक्षर सत्य है और पर्दे के पीछे जो कुछ हो रहा है उसे मैं अपने बारह वर्ष के अनुभव से जानता हूँ। आज अथवा निकट भविष्य में परमाणु-शक्ति के उद्योग सम्बन्धी इस्तेमाल के बारे में साफ-साफ और

विश्वस्त ढंग से कुछ कहना असम्भव है। हो सकता है कि साधारण जनता अणु शक्ति और अणु बम के बारे में जो कुछ छपता है उसे पढ़ना ही छोड़ दे। क्योंकि जो कुछ छपता है, वह भ्रांतिजनक है।[1]

इस स्थिति पर पछताने की आवश्यकता नहीं। जो कुछ हुआ है उसके लिए किसी एक को दोषी ठहराने अथवा सुरक्षा कानूनों की और गुप्त भेदों की निन्दा करने की भी आवश्यकता नहीं। दुनियाँ इस समय

---

१. मेरे मन में जो बात है उसकी व्याख्या यों की जा सकती है कि चार बड़े राष्ट्रों की सरकारों में से, जो अब निश्चय ही परमाणु शक्ति को बढ़ा रही हैं, अगर, कोई एक यह घोषित करे कि उसने एक कारखाना लगा लिया है जिसमें परमाणु-शक्ति रचनात्मक प्रयोग के लिए तैयार की जायगी तो ऐसी घोषणा को समाचार पत्र अपने पहले पृष्ठ पर कुछ इस प्रकार शीर्षक देकर प्रकाशित करेंगे। "परमाणु-शक्ति का पहला कारखाना!" "···की सरकार ने मैदान मार लिया!" यह शीर्षक भ्रांतिजनक होगा। अमरीकन एटमिक इनर्जी कमीशन पिछले साल में किसी भी समय परमाणु-शक्ति के इस्तेमाल से बिजली पैदा कर सकता था, लेकिन यह बिजली अत्यन्त महँगी होती। सवाल यह पैदा होता है कि परमाणु-शक्ति के कारखाने में जो बिजली पैदा होती है, उसका खर्च कोयले अथवा तेल से चलने वाले कारखाने के मुकाबले में कितना कम या अधिक है। इसका अन्दाजा तो इंजीनियरिंग और हिसाब-किताब के विश्लेषण द्वारा ही हो सकता है। यह विश्लेषण बहस का विषय है। इस पर तभी भरोसा किया जा सकता है जब सारा हिसाब-किताब पब्लिक तौर पर समझाया जाय। इसमें ऐसी गुप्त जानकारी भी देनी पड़ेगी जैसे परमाणु ईंधन पर क्या खर्च हुआ, कारखाने पर क्या खर्च हुआ? ऑप्रेशन का सारा विवरण और यूरेनियम पर कितना खर्च हुआ। निकट भविष्य में कोई सरकार ऐसी जानकारी पब्लिक तौर पर बता सकती है, मुझे इस पर सन्देह है। इस जानकारी के बिना परमाणु-शक्ति सम्बन्धी कोई भी खबर निरर्थक और सर्वथा भ्रान्तिजनक होगी।

जिस स्थिति में है और भविष्य में काफी समय तक जैसी रहेगी। उसमें गुप्तता और परमाणु भौतिक विज्ञान के शब्द साथ-साथ चलेंगे। लेकिन इन दोनों शब्दों के मेल से जो परिणाम हो सकते हैं जनसाधारण को उसकी जानकारी प्राप्त होनी चाहिए। इसके अलावा यह बात महत्त्वपूर्ण है कि रहस्य का यह पर्दा जरूरत से अधिक न फैलाया जाय अर्थात् इसे परमाणु भौतिक विज्ञान के अतिरिक्त विज्ञान की जो शाखाएँ हैं इसे उन पर लागू न किया जाय। एक गुप्त राष्ट्रीय इजारेदारी में विज्ञान की प्रगति कठिन है, क्योंकि तब सरकार के कुछ महकमों को छोड़कर इसकी खोज बाकी सबसे गुप्त रखी जाती है। गुप्तता और विज्ञान वास्तव में एक दूसरे के विरोधी शब्द हैं।

मैंने अभी जो कुछ कहा है उसे स्पष्ट करने के लिए मैं पिछले दो साल की विज्ञान की साधारण उन्नति से दो उदाहरण दूँगा। कपड़े के उद्योग में जो क्रान्ति आई है उसका ध्यान कीजिए और चिकित्सा और दवाइयों में जिन 'चमत्कारपूर्ण औषधियों' का जो प्रयोग हो रहा है, उसे स्मरण कीजिए। इन दोनों में जो वास्तविक सत्य है उसे आप भली भाँति जानते हैं, मुझे सिर्फ याद करा देना काफी है। इसका आरम्भ यों हुआ कि वालेस कारुथरस जब से ऐसे पदार्थों की बनावट की खोज कर रहा था, जिनके परमाणुओं का वजन अधिक होता है उसे सहसा नई बात मालूम हुई, जिसके आधार पर डूपॉट कम्पनी ने निलोन तैयार किया। पहले इस खोज को गुप्त रखा गया, लेकिन जैसे ही कपड़ा बनकर बाजार में आया, विज्ञान की तमाम बुनियादी बातें बता दी गई और उन्हें पेटेंट करा लिया गया। इसमें सन्देह नहीं कि इस खोज तक पहुँचने के तथा-कथित 'उपाय' भी बता दिये गये।

कारुथरस के इस काम से एक नई राह खुल गई और शीघ्र ही दूसरे कपड़े भी तैयार होने लगे और व्यापार में दूसरी कम्पनियाँ मुकाबला करने लगीं। वास्तव में पिछले बीस-तीस साल में कृत्रिम कपड़ों और कृत्रिम प्लास्टिकों की जो उन्नति हुई, वह अपने आप में एक रोचक कहानी है। लेकिन इस असली विज्ञान में कुछ भी क्रान्तिकारी नहीं है। जर्मन कैमिस्टों ने सौ साल पहले जिन उपायों से बनावटी रंग और

बनावटी दवाइयाँ बनाई थीं, अगर देखा जाय तो उन्हीं उपायों को कुछ और विकसित किया गया है।

आप पूछ सकते हैं कि विज्ञान की यह उन्नति परमाणु-शक्ति से कैसे भिन्न है। पहले, यह सारी उन्नति जिसका मैंने उल्लेख किया है, प्राइवेट तौर पर हुई है; दूसरे, इस काम को गुप्त नहीं रखा गया (क्योंकि अपने स्वभाव ही से यह गुप्त नहीं रख सकता था); और तीसरे, बहुत सी प्रतिद्वंद की कम्पनियाँ इन खोजों को ले उड़ीं। दरअसल मैं यह कहने का साहस करूँगा कि अगर किसी सरकार ने इन खोजों पर अपनी इजारेदारी स्थापित कर ली होती और उन्हें गुप्त रखने का प्रयास किया होता तो जो नई वस्तुएँ अब बाजार में आ रही हैं, वे अगर कभी वाकई आते तो बहुत देर में आते।

अगर आप आज्ञा दें तो मैं एक तथाकथित चमत्कारपूर्ण औषधि, पेंसिलिन का उदाहरण देना पसन्द करूँगा। इस खोज को भी कुछ समय से अधिक गुप्त नहीं रखा जा सका। युद्ध के दिनों में पेंसिलिन के सम्बन्ध में इतनी ही उन्नति हुई जितनी परमाणु बम के सम्बन्ध में। लेकिन देखिए मैडिकल साइंस की परम्परा और तमाम दुनियाँ की भावनाओं के कारण किसी भी राष्ट्र के लिए इसे गुप्त रखना असम्भव हो गया। इसलिए जैसे ही युद्ध समाप्त हुआ तमाम दुनियाँ के लोग इस समस्या पर विभिन्न उपायों से काम करने लगे। इसके परिणामस्वरूप कई तरह की पेंसिलिन तैयार हो गई। और इसके इस्तेमाल में बड़ी तरक्की हुई। स्वाधीन अन्तर्राष्ट्रीय विज्ञान का यह एक उदाहरण है। जनता को यह पसन्द है, लेकिन देखिये कि आम तौर पर विज्ञान के बारे में बात करते समय लोग इसकी कितनी कम चर्चा करते हैं। यह इसलिए कि इसमें कोई नई बात नहीं है। कई पीढ़ियों से लोग औषधि के वैज्ञानिकों से यह आशा रखते हैं कि वे बेहतर दवाइयाँ बनायें और इलाज के बेहतर तरीके निकालें। सार्वजनिक स्वास्थ्य और औषधि विज्ञान की उन्नति तो स्वाभाविक रूप से होनी ही चाहिए। जनता के इस अहसास के साथ कि वैज्ञानिक आविष्कारकर्त्ता—अजीब-अजीब हथियारों के आविष्कारक बन गये हैं—यह विचार भी दृढ़ हुआ है कि वैज्ञानिक इलाज को बेहतर

बनाने में चिकित्सकों की सहायता कर रहे हैं। विज्ञान के इस कार्य का जो महत्त्व है उसके विषय में मैं अपने अंतिम भाषण में कहूँगा।

अब मैं इस बात पर प्रकाश डालूँगा कि वैज्ञानिक भौतिक विज्ञान, रसायन और जीव-विज्ञान में क्या उपाय अपना रहे हैं और व्यावहारिक रूप में विज्ञान को प्राकृतिक विज्ञानों पर कैसे लागू कर रहे हैं। अगर मैं इस सम्बन्ध में साधारण जानकारी की बातें कहूँ तो आप मुझे क्षमा करेंगे। क्योंकि यूनीवर्सिटी में तथाकथित वैज्ञानिक तरीकों की चर्चा होती ही रहती है ? अंतर सिर्फ यह है कि मैं यह चर्चा तनिक विस्तार से करना चाहता हूँ।

मेरी धारणा यह है कि विज्ञान के वह इतिहासकार और फिलास्फर जो यह कहते हैं कि वैज्ञानिक पद्धति जैसी कोई बात नहीं है, वे जनता की सेवा कर रहे हैं। मैं समझता हूँ कि हाई स्कूलों की प्रारम्भिक पुस्तकों में विज्ञान और विज्ञान सम्बन्धी कार्य के जो संक्षिप्त वर्णन मिलते हैं, वे भौतिक विज्ञान, रसायन और जीव-विज्ञान के इतिहास के गलत अध्ययन पर निर्भर हैं। इस सम्बन्ध में जो गलत नतीजे निकाले गये हैं, वे क्यों निकाले गये हैं, मैं इसकी चर्चा नहीं करूँगा। इसके बजाये विज्ञान सम्बन्धी मैं अपना विश्लेषण प्रस्तुत करूँगा।

इसलिए कि तिनकों का पहलवान बनाकर मैं उसे पटकनी दे सकूँ, मैं वैज्ञानिक पद्धति की एक प्रतिभाषा उद्धृत करना चाहता हूँ। यह प्रतिभाषा रसायन की एक प्रारम्भिक स्कूली पुस्तक में दर्ज है। पुस्तक तीन-चार साल पहले प्रकाशित हुई थी और उसका एक लेखक मैं भी था। पुस्तक में लिखा है—"सोचने के वैज्ञानिक ढंग के लिए जरूरी है कि मनुष्य पहले के विचारों से प्रभावित हुए बिना वस्तुस्थिति का सामना करे। ठीक-ठीक निरीक्षण और अनुभव पर भरोसा बुनियादी सिद्धान्त हैं। इस बात से कुछ सरोकार नहीं कि पुस्तक किसी चीज़ के बारे में क्या कहती है बल्कि हमें उसे ख़ुद समझने का प्रयत्न करना है।" फिर समझने की क्या विधि हो इसका वर्णन हो। स्कूली पुस्तकों में, जिनमें यह पुस्तक भी शामिल है जो मेरी सहायता से लिखी गई थी, यह वर्णन इस प्रकार होते हैं—वैज्ञानिक अपना यथार्थ ज्ञान जो कुछ घटित हो रहा है उसे

ध्यानपूर्वक देखकर जुटाते हैं। वे अपने इस ज्ञान की अपने से पूर्व ज्ञान के प्रकाश में व्याख्या करने का प्रयत्न करते हैं। तब एक वैज्ञानिक अपना सिद्धान्त बनाता है, जिसके द्वारा वह यथार्थ ज्ञान की व्याख्या करता है और अन्त में वह इस प्रकार के दूसरे यथार्थ ज्ञान और वस्तुस्थिति पर लागू करके और पूर्व-अर्पित अनुभव से उसकी तुलना करके अपने सिद्धान्त को परखता है। जब उसका सिद्धान्त हालात पर पूरा न उतरे तो उसे इसमें सुधार करना चाहिए और साथ ही अधिक सामग्री जुटाकर अपने ज्ञान की परख करनी चाहिए।

एक जीव-विद्या-शास्त्री का एक दूसरा वर्णन लीजिए जो कुछ अधिक अष्ट है और जिसका नाम उसने 'वैज्ञानिक पद्धति के उपाय' रखा है। उपाय ये हैं—"एक, मान लो कि अनिश्चित स्थिति मौजूद है। यह एक अस्पष्ट स्थिति है जिसकी जाँच जरूरी है। दो, समस्या को स्पष्ट शब्दों में बयान करो। तीन, हल की योजना बनाओ। चार, निरीक्षण अथवा परीक्षण अथवा दोनों से जाँच की विधि निकालो। पाँच, प्रमाण अथवा 'कच्ची सामग्री' जुटाओ। छः, इस कच्ची सामग्री से एक अर्थपूर्ण और महत्त्वपूर्ण बयान तैयार करो। सात, नतीजा निकालो जो प्रमाणित मालूम हो, अगर नतीजा सही है तो उसके आधार पर भविष्यवाणियाँ करो। आठ, अगर तुम्हारा नतीजा विज्ञान में नई जानकारी सिद्ध हो तो उसका पहले की जानकारी से एकीकरण करो।"

ऐसे वर्णनों का उद्देश्य साधारण व्यक्ति को भ्रम में डालने के अतिरिक्त और कुछ नहीं। दो प्रकार की क्रियाएँ, जिनसे विज्ञान का इतिहास बनता है, साथ-साथ चलती हैं, बुनियादी गलती उनके अन्तर को न समझना है। गलतियों के समय से प्राकृतिक विज्ञान की जो उन्नति हुई उसकी कहानी इस प्रकार है। कारीगरों और निपुण मजदूरों ने सदियों के अभ्यास से निर्जीव प्रकृति को काम में लाने के तरीकों में जो सुधार किया वह धीरे-धीरे एक विशेष प्रकार के चिन्तन में ढल गया और उस समय तक इस चिन्तन का नाम गणित पड़ गया था। इसी बात को इस प्रकार भी कहा जा सकता है कि मानव-क्रिया, जो सोलहवीं सदी तक दो अलग-अलग धाराओं में बह रही थी, धीरे-धीरे वे दोनों मिलकर

एक हो गईं । एक ओर कोरा चिन्तन था जिसका विकास यूक्लीटस के रेखा-गणित में हुआ और दूसरी ओर व्यावहारिक अनुभव था जिसका विकास धातू शोधने वालों द्वारा हुआ जिन्होंने सदियों के परिश्रम और अभ्यास के खानों से धातुएँ निकालीं ।

प्रकृति और ब्रह्मांड के बारे में फिलास्फरों के कल्पित विचार भी अव्यावहारिक चिन्तन ही का एक भाग थे, जिनमें मध्यकाल तक अरिस्टोटल के विचारों से प्रमुखता प्राप्त थी । डेमोक्रेट्स की एक विरोधी विचारधारा भी साथ-साथ चल रही थी । जिन्होंने इस विचारधारा का अनुसरण किया उन्होंने सोचा कि संसार परमाणुओं का बना हुआ है ।

'वैज्ञानिक पद्धति की जो व्याख्याएँ आम तौर पर की जाती हैं वे ऐसी सीमित ढंग की व्याख्याएँ हैं जिनसे कोई व्यक्ति किसी खास काम में सुधार कर सकता है । मगर हम दरअसल इनमें से किसी एक व्याख्या को लें तो हम उससे इस मशीन-युग में अपने घर की किसी व्यावहारिक समस्या को हल कर सकते हैं । अगर आपके देहाती घर में बिजली फेल हो जाय तो आप जीव-विद्या शास्त्री के आठ उपायों को इस स्थिति पर सहज में लागू कर सकते हैं । निश्चय ही कहीं-न-कहीं कुछ खराबी है । स्पष्ट शब्दों में समस्या यह है कि जब आप स्विच दबाते हैं तो बिजली नहीं जलती । अब क्या किया जाय ताकि बिजली जल जाय ? एक सम्भावना यह हो सकती है कि शायद बल्ब जल गया हो । अगर नया बल्ब लगाने से बिजली जल जाती है तो एक निश्चित परिणाम निकल आता है और यह परिणाम हालात पर फिट करता है । फिर आप अनुभव से जानते हैं कि शायद फ्यूज़ उड़ गया हो । समस्या साफ है । आप फ्यूज़ का नया तार लगाते हैं तो बिजली जल जाती है । संक्षेप में तथाकथित वैज्ञानिक विधि अनुभव की बात है और वह जीवन की समस्याओं पर लागू हो सकती है ।

अध्यापक अपनी क्लास को अकसर बताते हैं कि वैज्ञानिक पद्धति दैनिक जीवन पर लागू की जा सकती है और इसके लिए वे ऐसे ही उदाहरण देते हैं जैसे कि मैंने अभी दिया है । लेकिन मैं समझता हूँ कि

विज्ञान के इतिहास को समझने का यह तरीका गलत है और घोड़े के आगे गाड़ी जोतना है। दरअसल एक वैज्ञानिक अपनी प्रयोगशाला में जो कुछ करता है वह बुनियादी तौर पर एक आदि मनुष्य की आदतों से मिलता-जुलता है। उदाहरण के लिए हम कल्पना कर सकते हैं कि हमारे किसी पूर्वज ने आग के प्रभाव को बहुत सी धातुओं पर परखकर देखा और अपने सहज निरीक्षण से धीरे-धीरे खान से धातु निकालने का तरीका मालूम किया।

यह सारी जानकारी 'प्रयोग ज्ञान' कहलाती है; जिसका अर्थ है कि यह अनुभव सत्य है। जाॅन टिंडल ने उफान पर अपना प्रसिद्ध भाषण देते हुए कहा था—"अब तक कलाल का काम भौतिक-वैज्ञानिक के काम से मिलता-जुलता था, क्योंकि दोनों का काम प्रयोग ज्ञान पर निर्भर करता था।" (मैं उल्लेख में अपना 'प्रयोग ज्ञान' शब्द का इस्तेमाल समझाने के लिए कर रहा हूँ) इसका मतलब है कि यथार्थ स्थिति का निरीक्षण सिद्धान्तों से अलग है, सिद्धान्त व्याख्या करते हैं और वस्तुस्थिति पर मस्तिष्क का आधिपत्य स्थापित करते हैं। कलाल ने लम्बे अनुभव से हालात को समझा, लेकिन सफलता के कारणों को नहीं समझा। लेकिन जिन बातों की व्याख्या नहीं हो सकी तो उसे उनका मुकाबिला करना पड़ा और अब भी करना पड़ता है।

जिस समय टिंडल यह कह रहा था कि उस समय शराब बनाना अथवा बीयर तैयार करना प्रयोग ज्ञान था। लेकिन पास्टेर और कैमिस्टों के काम ने प्रयोग ज्ञान की मात्रा को बहुत कम कर दिया। लेकिन अब भी इस पेशे में ऐसे बहुत से तरीके हैं जिनका आधार केवल अनुभव पर है और रसायन के सिद्धान्तों से उनका कोई सम्बन्ध नहीं जोड़ा गया। प्रयोग ज्ञान से किसी पेशे अथवा विज्ञान की किसी शाखा की व्याख्या बहुत आसान है। मगर कोई व्यक्ति ऐसी क्रिया में दिलचस्पी रखता है जिसमें प्रयोग ज्ञान की मात्रा बहुत कम हो तो उसे निरीक्षण-कर्त्ता का काम देखना चाहिए। बहुत समय पहले आँख के शीशे बनाने के विज्ञान का विकास इसलिए हुआ कि जाँच अथवा पैमायश करने वालें को जो औजार दरकार थे उनके शीशे गणित के फार्मूलों से ठीक-ठीक

शकल के बनाये जा सकते थे। यूक्लीटस् का रेखागणित जाँच और पैमायश करने वाले के काम का बुनियादी आधार बन गया। इसलिए हम कह सकते हैं कि निरीक्षणकर्त्ता का काम ऐसा व्यावहारिक विज्ञान है जिसमें प्रयोग ज्ञान शून्य मात्रा है। इसके विपरीत आप एक बढ़िया रसोइये के काम को लीजिए। विटामिन, हड्डियाँ, चरबी और फासफोरस सम्बन्धी हमारा वैज्ञानिक ज्ञान चाहे कितना ही बढ़ गया हो, लेकिन स्वादिष्ट भोजन तो योग्य ज्ञान से ही तैयार होता है।

प्रयोग ज्ञान सम्बन्धी इस विचार को मैं अपने भाषणों में बार-बार इस्तेमाल करूँगा। इस विचार को मैंने इस समय आपके सामने इसलिए रखा है कि वैज्ञानिक और आविष्कारक के काम में सम्बन्ध स्थापित किया जा सके। उन्नीसवीं सदी में जब आविष्कारक का बोलबाला था, तो उसके पास विज्ञान का ज्ञान बहुत ही प्रारम्भिक और थोड़ा था। उसे गणित और सिद्धान्त से भी बहुत थोड़ी सहायता मिलती थी। वह इस नये ज्ञान को ज्यादातर प्रयोग ज्ञान की सहायता से काम में लाता था।

थोड़ी देर पहले मैं विज्ञान और समाज के आपसी सम्बन्ध में, जो नये क्रान्तिकारी तत्त्व शामिल हुए हैं उनकी, बात कर रहा था। मैंने कहा था कि राह चलता आदमी-साधारण जनता भी समझने लगी है कि आज वैज्ञानिक आविष्कारकर्त्ता बन गया है। इसका मतलब यह है कि 'लम्बे बालों वाला' प्रोफेसर जो पहले कल्पना मात्र से गणित के सिद्धान्त बनाया करता था अब उसने परमाणु-बम की असाधारण उन्नति में महत्त्वपूर्ण काम किया है। लोग यह भी महसूस कर रहे हैं कि दूसरे क्षेत्रों में भी प्रयोगज्ञान की मात्रा कम कर देने से और सिद्धान्त और व्यवहार में तालमेल पैदा करने से मनुष्य का निर्जीव प्रकृति पर विजय प्राप्त करना सहज हो गया है। इससे आधुनिक रसायन अथवा बिजली में जो सफलतायें प्राप्त हुई हैं, उनकी कहानी बयान करने के लिए कई घंटे दरकार हैं। वालेस कारुथरस की खोज जिससे कृत्रिम कपड़ा तैयार हो सका अथवा बिजली से चलने वाले यंत्रों की उन्नति अथवा वेकुम ट्यूब के स्थान पर ठोस पदार्थ का इस्तेमाल—इन सब उदाहरणों से एक ही बात की व्याख्या होती है।

नये सिद्धान्तों के आधार पर होने वाली और प्रयोग-ज्ञान के आधार पर होने वाली उन्नति में अन्तर बताते हुए मैंने एक तब्दीली का बहुत कम जिक्र किया है और यह तब्दीली आधुनिक विज्ञान की इस उन्नति के सारे जमाने में बराबर होती रही है। हमने यह सीख लिया है कि कुछ तरीके ऐसे हैं, जो प्रयोग ज्ञान के ढंग से हो रहे हैं और उन्हें सिद्धान्त के बिना ही उन्नत करना सम्भव है। अर्थात् हमने अनुभव ही से प्रयोग ज्ञान को बढ़ा लिया है। पिछली सदी में एक आविष्कार करने वाला अपने घर में बैठा काम में सफलता प्राप्त करने के लिए पहले एक तरीका और फिर दूसरा तरीका अपनाता था, क्योंकि वहाँ उसकी कोई आलोचना करने वाला नहीं था, अगर उसके तरीके नाकारा थे तो दूसरे को इससे कोई सरोकार नहीं था। लेकिन जब आविष्कार का काम वैज्ञानिकों द्वारा प्रयोगशालाओं में होने लगा तो आत्म-आलोचना का स्थान समूह-आलोचना ने ले लिया। लोगों को मालूम हो गया कि अगर किसी समस्या को जल्द-से-जल्द हल करना है तो हर एक अनुभव के निरीक्षणों का ठीक-ठीक हिसाब रखना होगा। फिर नियमित और अनियमित काम से जो गलतियाँ पैदा होती हैं, उनमें भी अन्तर होता है। यही घरेलू उदाहरण लीजिए कि बिजली क्यों नहीं जलती ? अगर हम नियमित रूप से जाँच करें तो खराबी जल्द मालूम हो जायगी और जाँच अगर अनियमित रूप से की जाय तो एक ही तरीका बार-बार दोहराया जायगा और खराबी देर में मालूम होगी।

जिसे आम तौर पर वैज्ञानिक तरीका कहा जाता है वह वास्तव में एक नियमित अनुभव को व्यवस्थित ढंग से बयान कर देने के अतिरिक्त कुछ नहीं है। अब बात यह निकली कि विद्वान् की उन्नति में एक तत्त्व प्रयोगज्ञान सम्बन्धी नियमित जाँच है और दूसरा तत्त्व नये विचारों का प्रयोग है। नये विचार और नई योजनाएँ उसी काम को बड़े पैमाने पर करने में सहायता पहुँचाती हैं। सैद्धान्तिक तत्त्व शामिल कर लेने से प्रयोग ज्ञान की मात्रा कम हो जाती है। सिर्फ इन्हीं विचारों के प्रयोग से जो बहुत ही महत्त्वपूर्ण थे विज्ञान की उन्नति हुई है। ये विचार न्यूटन के सिद्धान्तों में निहित हैं। ये विचार हमें बताते हैं कि धरती

हवा के समुद्र से घिरी हुई है, जो दबाव डालता है, प्रकाश ब्रह्मांड में फैले हुए ईथर की कम्पित गति है और यह कि पदार्थ पर माणुओं का बना हुआ है। कोई चीज बनाने के लिये उनका एक निश्चित अनुपात से मिलाप होता है। आधुनिक विज्ञान की उन्नति में जो आवश्यक तत्त्व है वह सैद्धान्तिक विचारों और कारीगरों के अनुभव का आपसी मिलाप है। इसी मिलाप के कारण वैज्ञानिकों ने सिद्धान्त और व्यवहार को मिलाने वाली विचारधारा और योजनाएँ बनाईं।

जो स्पष्ट है, उसके बारे में अधिक कहने की आवश्यकता नहीं, मैं सिर्फ इतनी बात दोहराना चाहता हूँ कि अनुभव के नियमित तरीकों के कारण ही व्यावहारिक कलाओं की महान् उन्नति सम्भव हो सकी। ये तरीके व्यावहारिक विज्ञान में अब भी इस्तेमाल होते हैं। उदाहरण के लिए धातुओं के शोधन में और जीवित पदार्थों के रसायनशास्त्र में प्रयोग ज्ञान की मात्रा अब भी अधिक है, लेकिन पिछले साढ़े तीन सौ साल में भौतिक-विज्ञान, रसायन और जीव-विज्ञान का जो विकास हुआ उसके लिए नये विचारों और विस्तृत कल्पित योजनाओं का विकास आवश्यक था। जसे-जैसे इन विज्ञानों में सन्तोषजनक सिद्धान्तों की अधिकाधिक वृद्धि होती गई उतनी ही प्रयोग ज्ञान की मात्रा कम होती गई। इन व्यावहारिक प्रयत्नों के कारण परीक्षण करने वालों के लिए अपने काम में ठीक-ठीक भविष्यवाणी करना अधिक सम्भव होता गया। सैद्धान्तिक विज्ञान के विकास का व्यावहारिक महत्त्व यही है। पिछले डेढ़ सौ साल के इतिहास पर दृष्टि डालने से यह बात सिद्ध हो जाती है कि खालिस विज्ञान की उन्नति से क्या होता है। नये सिद्धान्त बनते हैं, व्यावहारिक काम के नतीजों से उनका सम्बन्ध जोड़ा जाता है और इससे व्यावहारिक कलाओं में जो काम हो रहा होता है और व्यापार के लिए बड़े पैमाने पर पैदावार के सम्बन्ध में भविष्यवाणी सम्भव हो जाती है।

जीव-विज्ञान से कोई दूसरा अच्छा उदाहरण इसका नहीं मिलेगा और इसी की बात जॉन टिंडल कर रहा था। उफान की व्यावहारिक कला के बारे में टिंडल ने जो शब्द कहे थे, उनका उल्लेख मैं पहले कर चुका हूँ। इस बात की व्याख्या करते हुए कि जब तक उसके काम का

आधार सिर्फ प्रयोग ज्ञान था, कलाल क्यों आगे नहीं बढ़ सका, उसने कहा—"जो बातें समझ में नहीं आती थीं उसे उनका सामना करना होता था और अब भी करना होता है। बार-बार उसकी मेहनत व्यर्थ हो जाती थी। उसकी बीयर में तेजाबी तत्त्व उत्पन्न हो जाता था अथवा वह खराब हो जाती थी। यह क्षति उसके लिए असह्य थी और कारण उसकी समझ में नहीं आता था। ये गुप्त शत्रु थे जिनके विरुद्ध चिकित्सक और कलाल अब तक लड़ते रहे हैं। आधुनिक खोजें इन गुप्त शत्रुओं को प्रकाश में ले आईं और इससे उन्हें सदा के लिए खत्म करना असम्भव हो गया। लूई पास्टेयर ने शराब तैयार करने के तरीके का जो अध्ययन किया ये खोजें उसका नतीजा हैं। उसने बताया कि छोटे-छोटे कीट-प्राणी ही 'वे गुप्त शत्रु' हैं जिनका कलाल बिना जाने मुकाबला करता आया है। यह ज्ञान इस बात का नतीजा था कि पास्टेयर ने अन्दाजा लड़ाया कि उफान और दुर्गन्ध से कीट पैदा होते हैं। यह सिद्धान्त मालूम कर लेने के बाद पास्टेयर ने शराब के उद्योग में प्रयोगज्ञान की मात्रा कम कर दी। अब हम पास्टेयर की इस बात को एक अटल सिद्धान्त के रूप में ग्रहण करते हैं और इसे दुरुस्त समझकर भोजन तैयार करने के हर तरीके पर लागू करते हैं। इसके अलावा यह सिद्धान्त औषधि और स्वास्थ्य के सम्बन्ध में भी बुनियादी है। इसके बाद यह बताने की आवश्यकता नहीं रह जाती कि सिद्धान्त-व्यवहार को कितना लाभ पहुँचाता है।

इसके विपरीत अब ऐसा उदाहरण लीजिए जिसमें सन्तोषजनक सिद्धान्त न होने के कारण आश्चर्यजनक परिणाम निकलते हैं। मैं जीवित पदार्थों पर रासायनिक पदार्थों के असर की बात लेता हूँ। इसके बावजूद कि रसायनशास्त्री नये पदार्थ बनाने के बहुत से अनुभव कर चुके हैं और औषधियाँ बनाने वालों ने उन्हें पशुओं और मनुष्यों पर परखकर भी देखा है, फिर भी यह बताना लगभग असम्भव है कि किसी मनुष्य अथवा किसी दूसरे प्राणी पर एक रासायनिक पदार्थ का असर क्या होगा। एक उचित सिद्धान्त द्वारा ही किसी पदार्थ की परमाणु बनावट ठीक-ठीक लिख देना सम्भव हो सकता है और इसी के आधार

पर किसी पदार्थ के जीवित पदार्थ असर के सम्बन्ध में भविष्यवाणी की जा सकती है। आज यह भविष्यवाणियाँ कुछ पदार्थों ही के बारे में सीमित क्षेत्र में की जा सकती हैं। और इसमें भी प्रयोग ज्ञान की मात्रा अधिक होगी वरन् औषधियों के असर के बारे में हमारे पास कोई व्यापक सिद्धान्त नहीं हैं। सिर्फ पिछले छः-सात साल में यह आशा उत्पन्न हुई है और औषधि तैयार करने का तरीका भी एक विज्ञान बन सकता है।

मैं कह रहा था कि आविष्कार करने वाला आम तौर पर प्रयोग ज्ञान पर निर्भर करता था। उसने चतुर कारीगर की परम्परा को जारी रखा। अब उसका स्थान वैज्ञानिकों और इंजीनियरों की टीम ने ले लिया है। काफी हद तक वे भी प्रयोग ज्ञान के आधार पर काम करते हैं, लेकिन उनके काम का ढंग नियमित और व्यवस्थित है। अनुभव ने उन्हें नियंत्रण सिखाया है। जिन क्षेत्रों में सिद्धान्त लागू कर दिया गया लगभग उन सब में प्रयोग ज्ञान की मात्रा कम हो गई है। उद्योग और औषधियों में बहुत से वैज्ञानिक प्रयोग ज्ञान की मात्रा को कम करने और विज्ञान के वर्तमान सिद्धान्तों को लागू करने में व्यस्त हैं। यह सब संगठित सामाजिक कार्य बन गया है। एक सामाजिक वस्तु होने के नाते आधुनिक-विज्ञान को ध्यान से समझने की आवश्यकता है। कृषि, औषधि, स्वास्थ्य, कच्चे माल का उत्पादन और कारखानों में उनका इस्तेमाल इन सब में दक्ष प्रयोगवादी काम कर रहे हैं और अनुभवों में वे आधुनिकतम यंत्र इस्तेमाल करते हैं। प्रायः उनकी सफलता के कारण ही विज्ञान की उन्नति हो रही है अर्थात् वे नये सिद्धान्त बना रहे हैं और इन सिद्धान्तों को अनुभवों से परख रहे हैं और उन्हें जनता तक पहुँचा रहे हैं। वैज्ञानिक पत्रिकाएँ आपस के इस सम्बन्ध को सम्भव बना रही हैं। विज्ञान का सामाजिक स्वभाव खत्म कर दो अर्थात् वैज्ञानिकों में विचारों का आदान-प्रदान बन्द कर दो तो विज्ञान का विकास लगभग रुक जायगा। इस बात को ध्यान में रखते हुए सोचिए कि इस समय जो असीम धन गुप्त फौजी खोजों और विज्ञान की उन्नति पर खर्च किया जा रहा है उसके परिणाम क्या होंगे। आदमी इस बात पर हैरान हुए बिना नहीं रह सकता कि हमारे बहुत से वैज्ञानिक कब

तक इस विशेष प्रकार के काम में लगे रहेंगे, जिससे विज्ञान की पूरी परम्परा खतरे में पड़ गई है।

विज्ञान का इतिहास इस बात को निर्विवाद सिद्ध करता है कि वास्तविक क्रान्तिकारी और महत्त्वपूर्ण उन्नति प्रयोग ज्ञान से नहीं, नये सिद्धान्तों से होती है। और अतीत में जितने सिद्धान्त बने हैं वे विचारों के आदान-प्रदान और विचार-विमर्श का परिणाम हैं। अब यह देखना है कि गुप्तता की दीवार के पीछे इस विषय में कितनी उन्नति सम्भव है। यह दीवार पब्लिक नीति की प्रतिनिधि है। शस्त्रीकरण के इस भयंकर युग में मैं इसकी आवश्यकता पर ऐतराज नहीं करता। लेकिन स्वतंत्र देशों की जनता के लिए इसके अस्तित्व से सदा परिचित रहना और यह समझ लेना जरूरी है कि विशेष परिस्थितियों के कारण कुछ प्रकार की खोजों पर अब जो पाबन्दियाँ लगाई गई हैं, उनसे विज्ञान की उन्नति में जो बाधा पड़ती है औद्योगिक समाज उसे सहन नहीं कर सकता। अगर इस बात को भली भाँति समझ लिया जाय तो 'भौतिक विज्ञान में आधुनिक विकास' के एक प्रकार के महत्त्व को सहज में समझा जा सकता है।

दो

विज्ञान की परिवर्तनशील स्थिति

१९००—१९५०

पिछले दस-बारह साल में इस एक विषय पर कि "भौतिक विज्ञान की आधुनिक क्रांति का दर्शन पर क्या प्रभाव पड़ा?" बीसियों, सैकड़ों और शायद हजारों लेख लिखे जा चुके हैं। इसके बावजूद मेरा खयाल है कि आम आदमी यह समझने में असमर्थ है कि इधर भौतिक विज्ञान में जो परिवर्तन हुआ है, उसमें किस बात को क्रांति कहा जाय और न ही उसे यह मालूम है कि आधुनिक विज्ञान का उसकी निजी आशाओं और आशंकाओं पर क्या प्रभाव पड़ा है। वस्तुतः स्वयं गणित शास्त्री, वैज्ञनिक और विचारक इस बारे में एकमत नहीं हैं कि फिलॉस्फर सदियों से जिन मान्यताओं पर विचार करते आए हैं आधुनिक विज्ञान का उनसे क्या सम्बन्ध है ? अलबत्ता साधारण व्यक्ति के ज़ेहन में एक बात साफ है कि भौतिक-विज्ञान के क्षेत्र में कुछ बहुत ही शानदार और सनसनीखेज बात अवश्य है और यह कुछ पिछले पचास साल के अनुभवों के उन नतीजों का फल है जिसकी पहले आशा नहीं थी और इसमें नये सैद्धान्तिक विचार भी आश्चर्यजनक ढंग से उपयोगी सिद्ध हुए हैं। जो कुछ हुआ है, उसे तर्क और इतिहास की प्रतिभा में खींच-तानकर पहले परमाणु-बम के विस्फोट से जोड़ दिया गया है। अधिकांश लोग जिनमें वैज्ञानिक भी शामिल हैं, यही समझते हैं कि सन् १९४० से परमाणु-शक्ति सम्बन्धी जो उन्नति हुई है, वह नये भौतिक विज्ञान का प्रतीक है। यह एक क्रान्ति-कारी शस्त्र है भविष्य का क्रान्तिकारी स्वप्न अर्थात् बड़ी भारी औद्योगिक शक्ति है, लेकिन जाने क्यों इससे कुछ लोगों की यह धारणा बन गई है कि दुनियाँ के बारे में मनुष्य की जो मान्यता थी वह उसमें भी एक क्रान्ति है।

वैज्ञानिक स्थिति में जो परिवर्तन हुआ है, उसमें यह पहलू कि पदार्थ विनाशशील है, विज्ञान न जानने वालों को बहुत परेशान करता है। इस विषय पर लिखने वालों ने इस बात पर अधिक जोर दिया है कि पदार्थ की एक छोटी-सी मात्रा नाश होकर शक्ति में बदल गई और यही शक्ति हीरोशीमा की तबाही का कारण बनी। कुछ लोगों को खुद पदार्थ का लोप इतना ही परेशान कर रहा है जितना जीवन की क्षति और शहर की तबाही, क्योंकि उनके ज़ेहन में 'पदार्थ'' यथार्थता' का दूसरा नाम है।

प्रोफेसर पी० जी० टेट ने सन् १८७६ में भाषण देते हुए कहा था—"यथार्थता की, जिसे हम पदार्थ कहते हैं, बड़ी परख यह है कि उसका विनाश हो सकता है और न उसे पैदा किया जा सकता है। उसके वास्तविक अस्तित्व का यही एक प्रमाण है…" और यह बताते हुए कि रसायनशास्त्री पदार्थ की जितनी मात्रा लेकर कोई खोज शुरू करता है अन्त में वह उतनी ही रहती है, टेट ने कहा, "यही बात पदार्थ की वास्तविकता की बड़ी परख है।"

अगर इस बयान को ध्यान से देखा जाये तो मालूम होता तो उसके कहने का अभिप्राय यह था कि पदार्थ के विनाश होने अथवा नया बनने की कोई सम्भावना नहीं है। लेकिन उसने अपनी बात इस ढंग से कही है कि एक दार्शनिक प्रवृत्ति का वैज्ञानिक भी पदार्थ की अमरता के बारे में शर्त लगाने को तैयार हो जाय। मेरा ख्याल है कि वह एक आम प्रतिभाषा दे रहा था और ये आम प्रतिभाषाएँ एक विचारक व्यक्ति के दार्शनिक दृष्टिकोण को व्यक्त करने में बड़ा महत्त्व रखती हैं।

वैज्ञानिकों में पदार्थ को शक्ति में बदलने का विचार बीसवीं सदी के पहले पच्चीस वर्ष में पैदा हुआ। सबसे पहले पदार्थ में से किरणें निकलने की खोज हुई जो बेकरेल को अचानक मालूम हो गई। कुछ धातुएँ एक्स-रे के सदृश तेज प्रकाश छोड़ती थीं। सन् १९०३ में क्यूरी[1] दम्पति ने रेडियम को इन धातुओं से अलग किया और १९१० में यह भी मालूम

---

१. फ्रांस के प्रसिद्ध वैज्ञानिक पति और पत्नी जिन्होंने रेडियम की खोज की।

हो गया कि प्रकाश छोड़ने वाली कुछ धातुएँ अपने आप शक्ल तब्दील करती रहती हैं और यह शक्ल बदलने वाली चीजें फिर रसायनशास्त्रियों के अध्ययन का विषय बन गईं। इस अद्‌भुत नये रसायन में सबसे पहले महत्त्वपूर्ण खोज करने वाला नौजवान सौडी था। पदार्थ और शक्ति के बारे में उसने जो कुछ कहा है, तीस साल बाद होने वाले परिवर्तनों के प्रकाश में वह काफी महत्त्वपूर्ण है। एक प्रसिद्ध पुस्तक जो १९१२ में प्रकाशित हुई, उसने लिखा, "हाल ही में प्रकाश क्रिया का कारण यह मालूम हुआ है कि कुछ परमाणु अपने आप टूट-टूट कर हल्के अणु बनते रहते हैं। इस प्राकृतिक परिवर्तन से जो शक्ति उत्पन्न होती है उसने पहले के सब उदाहरणों को मात कर दिया है। हमारे पास जो विस्फोट करने वाले पदार्थ हैं, जिनसे किसी चीज के परमाणु सहसा अलग-अलग हो जाते हैं, उनसे जो शक्ति उत्पन्न होती है, वह खुद परमाणु फटने से उत्पन्न होने वाली शक्ति का हजारवाँ और लाखवाँ अंश भी नहीं। पदार्थ सम्बन्धी परिवर्तन की इन दोनों बातों में, जिनमें से एक दस साल पहले मालूम थी और एक आज मालूम हुई, जो अन्तर है उसने विज्ञान के सामने बिलकुल नया क्षेत्र खोल दिया है। सिर्फ गति सम्बन्धी शक्ति ही ऐसी है, जो समझी और जानी जा सकती है। लेकिन पदार्थ में जो सम्भावित शक्ति है, हम उसे उस समय तक न तो जान सकते हैं और न प्राप्त कर सकते हैं, जब तक कि पदार्थ को तबदील करके इस निहित शक्ति को गतिमान शक्ति में परिणत न कर दिया जाये।

सौडी के समय से सन् १९४३ तक जब शिकागो में प्रतिक्रिया का आत्म-निर्भर क्रम शुरू हुआ कुछ वैज्ञानिक समय-समय पर तत्त्वों को तोड़कर शक्ति की एक बड़ी मात्रा उत्पन्न करते रहे। सन् १९२० तक अधिकांश भौतिक वैज्ञानिक सापेक्षता के सिद्धान्त के अनुसार सोच रहे थे। लेकिन पहले विश्व-युद्ध के अन्त पर आइंस्टीन ने प्रकाश न छोड़ने वाले तत्त्वों के परमाणुओं का अध्ययन पूरा किया और वह पदार्थ को शक्ति में बदलने की बात सोचने लगा। सन् १९२० तक आइंस्टीन के सिद्धान्त, प्रकाश-क्रिया (Rudiation) के विस्तृत ज्ञान, आइसोटोप्स की खोज और कुछ 'खालिस' तत्त्वों के परमाणु निश्चित हो जाने से इस परिणाम

पर पहुँचना सम्भव हो गया कि कृत्रिम उपायों से भी पदार्थों की शक्ल बदली जा सकती है। लेकिन तब भी इस भविष्यवाणी में एक गलती थी।

मुझे याद है कि पहले विश्व-युद्ध के थोड़े ही दिनों बाद आइंस्टीन ने अपनी खोज के आधार पर बताया था कि एक अंतिम सीमा के तत्त्वों को मध्यम तत्त्वों में बदला जा सकता है। ऐसा करने से पदार्थ का जो विनाश होता है, उससे भारी शक्ति उत्पन्न होती है (इसके लिए उसने आइंस्टीन के सिद्धान्त का प्रयोग किया था) लेकिन उसे निकट भविष्य में ऐसा होने की आशा नहीं थी। इसलिए उसने कहा था—"जब यह तरीका मालूम हो गया तो निश्चय ही एक नये नक्षत्र का सूत्रपात होगा।" दूसरे शब्दों में उसका ख्याल था कि जब यह शक्ति मुक्त होगी तो वह कंट्रोल में नहीं रहेगी। उस तत्त्व के तमाम परमाणु आपस में टकरायेंगे और यह नक्षत्र अर्थात् धरती आग की गेंद के सदृश जल उठेगी।

रूथर फोर्ड ने कृत्रिम ढंग से पदार्थ की शक्ल बदलने का जो अनुभव किया, उसके बाद भी परमाणु के भीतर की शक्ति को मुक्त करने की सम्भावना कम थी। बहुत ही तीव्र गति वाले अणुओं को कुछ तत्त्वों से टकराकर ऐसा किया गया था। अणु की गति को इतना बढ़ाने के लिए कि वह तत्त्व की शक्ल बदल सके उसमें बहुत शक्ति दाखिल करनी पड़ी थी और 'टकराव' इतना कम होता था कि उससे जो शक्ति उत्पन्न हुई वह बहुत ही मामूली थी। शक्ल तो बदल गयी थी, लेकिन उससे शक्ति उत्पन्न होने की जो आशा थी, वह पूरी न हुई।

आखिर यह स्थिति एक नये अणु न्यूट्रोन की खोज से बदली। यह खोज यूरेनियम के बारे में युग परिवर्तक खोजें पूरी हो जाने के तुरन्त बाद चदविक ने सन् १९३२ में की। जनसाधारण के ज्ञान को बढ़ाने के लिए यह सब बातें सन् १९४५ तक सरल भाषा में बताई जा चुकी हैं। परमाणु के अध्ययन और उसके विस्फोट के बारे में सन् १९४० से १९४५ तक जो कुछ होता रहा, मैं उसे यहाँ बताने की कोशिश नहीं करूँगा।

धीरे-धीरे इस विचार के सत्य सिद्ध हो जाने से कि पदार्थ को शक्ति में बदला जा सकता है अथवा मानव-प्रयत्न से पदार्थ का विनाश सम्भव है वैज्ञानिकों के एक छोटे से ग्रुप के बाहर कोई भी नहीं चौंका। परमाणु शक्ति के नये विचार को खगोल विद्या पर लागू करने और सूरज की शक्ति की व्याख्या करने से भी जो दूसरे विश्व-युद्ध के साथ ही शुरू हो गई थी, लोगों पर यह प्रभाव नहीं पड़ा कि दुनिया का पूरा स्वभाव ही बदल गया है। परमाणु-शक्ति सम्बन्धी सिद्धान्त का दुनिया में पहले जो कुछ भी प्रयोग होता रहा, परमाणु बम उस सब पर भारी सिद्ध हुआ। 'देखना विश्वास करना है', सचमुच यह बहुत भारी विस्फोटक शक्ति थी और जो कुछ हम देखते हैं चाहे वह चित्रों में ही क्यों न देखें उस पर संदेह नहीं किया जा सकता। इसलिए हमारे अपने जीवन में वैज्ञानिक स्थिति में अगर अत्यन्त महत्त्वपूर्ण नहीं तो अत्यन्त नाटकीय परिवर्तन पदार्थ को शक्ति में और शक्ति को पदार्थ में बदलने का सिद्धान्त स्थापित होना है।

आइंस्टीन के प्रसिद्ध सिद्धान्त (ई=एम सी^{२}) के प्रति साधारण व्यक्ति की जो प्रतिक्रिया है उसे भौतिक वैज्ञानिक क्रांति का सांस्कृतिक महत्त्व कहा जा सकता है। कुछ परिस्थितियों में जब पदार्थ का लोप हो जाता है तो शक्ति उसका स्थान ले लेती है। कोई ऐसी बात नहीं है जिसे सहज बुद्धि ग्रहण न कर सके। लेकिन एक साधारण व्यक्ति के लिए इस बात को स्वीकार करना कठिन है कि एक रासायनिक परिवर्तन, मिसाल के तौर पर जलने के बाद भी पदार्थ वैसे का वैसा रहता है। जब भी हम दियासलाई जलाते हैं तभी यह बात झूठ जान पड़ती है। लेकिन प्रकाश की गति का इस बात से क्या सम्बन्ध है? यह सवाल' बहुत टेढ़ा है और वैज्ञानिक इसका जो जवाब देता है वह और भी परेशान कर देता है। वह पूछने वाले से कहता है—"मुझे अफसोस है लेकिन सापेक्षता का सिद्धान्त यही सिद्ध करता है और इस सिद्धान्त को भौतिक विज्ञान और गणित के कुछ ज्ञान के बिना समझाना अगर असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। मैं इसकी रूप-रेखा भी तो नहीं बता सकता, आपको इस पर विश्वास ही करना पड़ेगा।"

पूछने वाला इसका यह उत्तर देगा—"आप वैज्ञानिक हम साधारण लोगों से यह आशा रखते हैं कि संसार की व्याख्या के बारे में हम उन बातों से सन्तुष्ट रहें जिन्हें हम वैज्ञानिक रूढ़िवाद समझते हैं।"

संसार की व्याख्या में वैज्ञानिक सिद्धान्तों का रोल है चाहे उसे साधारण व्यक्ति को समझाया जा सकता है अथवा नहीं, इस विषय को मैं बाद में लूंगा। अब मुझे नये भौतिक विज्ञान की रूपरेखा बयान करने दीजिए। पिछले तीस-चालीस साल में जो कुछ हुआ है उसमें पदार्थ और शक्ति का एक दूसरे में बदल जाना अधिकांश भौतिक वैज्ञानिकों के लिए अधिक महत्त्व की बात नहीं है। प्रकाश के नये स्वभाव और पदार्थ पर उसकी गुणात्मक क्रिया से जो नया दृष्टिकोण उत्पन्न हुआ है वे उसे अधिक महत्त्वपूर्ण समझते हैं। उदाहरण के लिए पी० डब्ल्यू० ब्रिगमैन ने कहा है—"उन्नीसवीं सदी के अन्त से वैज्ञानिक को जिस स्थिति में से गुजरना पड़ा है उसे बुद्धिजीवी संकट कहा जा सकता है। इसका कारण ऐसे अनुभूत सत्यों का मालूम हो जाना है, जिनकी उसने कभी कल्पना तक नहीं की थी और जिनके सम्भव होने का उसे कभी खयाल तक नहीं आता था।"

जैसा कि प्रोफेसर ब्रिगमैन के शब्दों से विदित होता है, हमें विज्ञान के किसी विशेष प्रकार के परिवर्तन से कोई सरोकार नहीं। हमें यह देखना है कि सोचने की धारा कैसे बदल गई है? इसे हम वैज्ञानिक विचार की क्रान्ति कह सकते हैं, क्योंकि महत्त्व की जो बात है वह वैज्ञानिकों का का बदला हुआ रवैया है। यह परिवर्तन लगातार अनुभवों की खोज के आधार पर हुई है और इसने एक ऐसी स्थिति उत्पन्न कर दी है, जिसे वैज्ञानिक ने आज से सौ साल पहले एकदम असम्भव समझा होता। यह सब प्रकाश क्रिया (रेडियो-एक्टिवटी) जैसी तथाकथित क्रांतिकारी खोज से भिन्न है। इसका सम्बन्ध ऐसे नये विचारों से है, जैसे न्यूटन की खोजों और डार्विन के विकास के सिद्धान्त में निहित हैं। फिर भी कोई कह सकता है कि नया भौतिक विज्ञान' क्रांति से भी आगे बढ़ गया है। उसने तो अतीत को ऐसा झटका है कि सन् १६०० से अब तक विज्ञान के किसी सिद्धान्त ने इतना नहीं झटका था। लेकिन बुद्धि

सम्बन्धी घटनाओं के स्थायी प्रभाव को आँकते समय कायदे के तौर पर आदमी को यह नहीं भूलना चाहिए कि जब विचार की दिशा बदलती है तो उसका प्रभाव उन लोगों पर जो परिवर्तन के उस काल में जीवित होते हैं, बाद में आने वाले लोगों से कहीं अधिक पड़ता है। अभी से यह बताना कठिन है कि बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में भौतिक विज्ञान की जो क्रान्ति हुई इक्कीसवीं सदी में विज्ञान के इतिहासकार उससे क्या प्रभाव ग्रहण करेंगे।

वैज्ञानिक विचार में जो बुनियादी तब्दीली आई है उसे समझाने के लिए मैं एक उदाहरण लेता हूँ। मैं आप से कहूँगा कि आप प्रकाश की नहीं ताप की बात सोचिए और सौ साल पहले के युग में चले जाइए और एक ऐसे वक्ता को याद कीजिए जो विज्ञान पर भाषण देते हुए अपने सुनने वालों को यह कह कर मुग्ध कर रहा है कि 'ताप गति का एक ढंग' है। यह खयाल कि ताप एक तरल पदार्थ द्रव्य है जो गर्म शरीरों से ठंडे शरीरों की ओर तेजी से बहता है अनावश्यक सिद्ध किया जा सकता है। न सिर्फ अनावश्यक बल्कि रगड़ से ताप उत्पन्न होने जैसे बहुत से व्यवहारिक परिणामों की व्याख्या करने में असमर्थ है। इसलिए ताप का गति सम्बन्धी सिद्धान्त जो कभी बहुत उपयोगी था, अब गलत सिद्ध हो चुका है और उसका स्थान इस विचार ने ले लिया है कि ताप अणुओं की गति से सम्बन्धित है। इसके बावजूद पढ़ाने के लिए इस सिद्धान्त की उपयोगिता बाकी है। हम अब भी ताप के बहाव की बात करते हैं— और इस बहाव को मापने के लिए गणित का प्रयोग करते हैं जैसे ताप द्रव्य की एक इकाई हो। भौतिक विज्ञान और रासायन के सीमित क्षेत्र में अनुभवों से जो परिणाम निकलते हैं, उन्हें एक व्यवस्थित रूप देने में यह सिद्धान्त बड़े काम की चीजें हैं। लेकिन मैं सिर्फ 'सीमित क्षेत्र के परिणामों' की बात कह रहा हूँ, क्योंकि आगे जो अनुभव हुए उन्होंने इस सिद्धान्त की उपयोगिता को खत्म कर दिया। अगर इस सिद्धान्त को कायम रखा जाता तो नये परिणामों की व्याख्या के लिए निराधार कल्पित बातें कहनी पड़तीं। दूसरी ओर जब इस सिद्धान्त को त्यागकर ताप का सम्बन्ध अणुओं की गति से जोड़ दिया गया तो बहुत सी नई

सम्भावनाएँ उत्पन्न हो गई। सारांश यह कि आखिर अनुभव ने फैसला कर दिया कि ताप सम्वन्धी दोनों सिद्धान्तों में से कौन सा 'सत्य' है।

उन्नीसवीं सदी के अन्त में ऐसा लगता था कि जैसे ताप के वारे में अन्तिम निर्णय हो चुका है वैसे ही प्रकाश के वारे में भी हो चुका है। कहा जाता था कि विजली चुम्वक से प्रकाश में जो लहरें उत्पन्न होती हैं वही प्रकाश है। कहा जाता था कि उन प्रसिद्ध अनुभवों द्वारा जिनसें यह सिद्ध किया गया कि प्रकाश लहरें मात्र हैं यह पुराना विचार रद्द हो गया कि प्रकाश शरीरधारी है—अणुओं की नदी है। फिर कुछ और अनुभव हुए जो प्रकाश के लहर सम्वन्धी सिद्धान्त पर पूरे नहीं उतरते जैसे पहले कुछ अनुभव शरीर सम्वन्धी सिद्धान्त पर पूरे नहीं उतरते थे। सन् १९१० तक वहुत ही असंतोपजनक स्थिति उत्पन्न हो गई जिसमें यों कहा जाने लगा कि प्रकाश जव निकलता है और प्रवेश करता है तव ऐसे लगता है जैसे अणुओं की नदी हो और जव चलता है तो ऐसे लगता है जैसे लहरें हों। चालीस साल पहले के वैज्ञानिक के लिए यह ऐसी ही वात थी जैसे कहना कि सन्दूक भरा हुआ भी है और खाली भी है। वे कहते थे कि यह असम्भव है कि प्रकाश अणुओं की नदी भी हो और लहरें भी हो। जिसमें ऐसा जान पड़ता था वह एक अस्थायी स्थिति थी। निश्चय ही कुछ समय लगेगा और फिर अनुभवों द्वारा इस समस्या का हल हो जायेगा। क्योंकि विज्ञान के इतिहास में हमेशा ऐसा होता आया है।

अब कोई यह कह सकता है कि पिछले चालीस साल में जो कुछ हुआ है वह यह है कि वैज्ञानिक पहले जिस स्थिति को असह्य समझते, अब वे उससे प्रेम करने लगे हैं। यह ऐसी वात है जैसे उनके पूर्ववर्ती ताप के द्रव्य-सम्वन्धी सिद्धान्त को न सिर्फ इसलिए रखने पर विवश थे कि उससे कुछ अनुभवों की व्याख्या सहज में हो जाती थी वल्कि जरूरत भी थी जब कि इस सिद्धान्त का विरोधी प्रमाण भी प्रवल था। इसके अलावा ऐसा लगता है कि उनके पूर्ववर्त्तियों ने फैसला किया था कि शक्ति और पदार्थ का स्वभाव ही ऐसा है कि ताप के दोनों सिद्धान्तों के पक्ष और विपक्ष में कोई फैसला करना असम्भव है। लेकिन इस युग के

लोग शुरू उन्नीसवीं सदी के वैज्ञानिकों के ऐसे फैसले को खुद विज्ञान की परम्परा के विरुद्ध बताते। विज्ञान की प्रगति नतीजों को विविध उपायों से परखकर होती है। जिस उपाय से नतीजा तजुरबे पर पूरा न उतरे, उसे त्याग दिया जाता है। यह खयाल कि ताप अथवा प्रकाश अथवा पदार्थ के बारे में दो सिद्धान्त हो सकते हैं और तजुरबे से दोनों रद्द अथवा सिद्ध हो सकते हैं, पचास साल पहले बुद्धिमान लोगों के लिए बिलकुल व्यर्थ था। ताप के बारे में हम अब भी मान सकते हैं कि द्रव्य-सिद्धान्त रद्द हो गया, मगर प्रकाश के बारे में हम इससे अधिक और कुछ नहीं कह सकते कि अणुओं का बना हुआ भी है और लहरों का बना हुआ भी है। हम देख चुके हैं कि पदार्थ के बारे में भी सिद्धान्त स्पष्ट नहीं है।

अपने इन भाषणों में मैं उन सब तजुरबों और खोजों का जिक्र नहीं करूँगा जिनके कारण भौतिक विज्ञान में क्रांति आई। वे दो-चार नहीं हैं और सरल भी नहीं हैं। नये सैद्धान्तिक दृष्टिकोण में उनकी व्याख्या इतनी सँजोई हुई है कि उनमें से एक तजुरबे को भी अलग करना कठिन है। दरअसल मेरा ख्याल है कि नये भौतिक विज्ञान के बारे में जो कुछ लिखा गया है, उसे सावधानी से पढ़ने की आवश्यकता है, क्योंकि आदमी एक पेचीदा तजुरबे को सरल ढंग से बताते समय शहादतों से नतीजे निकालने से पहले ही एक व्याख्या करने पर मजबूर हो जाता है।

इस सम्बन्ध में तजुरबे की जो असंख्य शहादतें हैं उन्हें आम लोगों के सामने संक्षेप में बयान करने के लिए भी कई भाषण दरकार हैं, इसलिए उन्हें एक भाषण में बयान करने का सवाल ही पैदा नहीं होता।

एक बार फिर याद करा दूं कि मेरे भाषण का विषय विज्ञान के बारे में जनता का बदला हुआ रवैया और वैज्ञानिकों का बदला हुआ दृष्टिकोण है। उन्नीसवीं सदी के दो बड़े सिद्धान्तों—पदार्थ की अक्षुण्णता और शक्ति की अक्षुण्णता का बीसवीं सदी में जो हश्र हुआ, उससे वैज्ञानिकों के दृष्टिकोण का पता सहज में चल जाता है। परमाणु-शक्ति की कहानी से हमें मालूम हो गया है कि उसने इन दोनों सिद्धान्तों को कैसे एक बना दिया है। वैज्ञानिक एक ओर अणु न्यूट्रनों के अस्तित्व

की खोज लगा रहे हैं ताकि पदार्थ-शक्ति सिद्धान्त को और आगे बढ़ाया जा सके। जहाँ तक कि मैं जानता हूँ अभी तक इस अणु के अस्तित्व का तजुरुबे से कोई प्रमाण नहीं मिला और न ही सम्भव जान पड़ता है। मुझे बताया गया है कि उसके अस्तित्व के सिद्ध या रद्द करने के लिए तजुरुबे किये जा सकते हैं। हमें यह मानकर चलना होगा कि कुछ तजुरुबों में पदार्थ और शक्ति की अक्षुण्णता खत्म हो जाती है अथवा न्यूट्रोन निकलता है। ऐसा मानकर चलने में बड़ी आसानी है वरना ऐसी मिसालें कम, बल्कि बिल्कुल नहीं जहाँ न्यूट्रोन निकलता हो। आम तौर पर सब तजुरुबों में पदार्थ और शक्ति का अनुपात नपा-तुला है। इसलिए न्यूट्रोनों की व्यवहारिक उपयोगिता वही है जो ताप के द्रव्य-सिद्धान्त की थी और जब कभी हमें ताप का बहाव मालूम करना हो, वह अब भी है।

अब तक मैंने उस कठिन स्थिति पर प्रकाश डाला है जो पिछली सदी के अन्त में विज्ञान के विकास के कारण उत्पन्न हो गई है। समतुलन स्थापित करने के लिए मैं दो शब्द उस आश्चर्यजनक (कम-से-कम कुछ लोगों के लिए आश्चर्यजनक) उपाय के बारे में भी कह दूं, जिससे रसायनशास्त्री और भौतिक-वैज्ञानिक के सिद्धान्त आपस में मिल गए हैं। घटनायें इस प्रकार हैं—सन् १९०० में इस का किसी को विश्वास नहीं था। उस समय परमाणु सम्बन्धी रसायनशास्त्रियों का सिद्धान्त और भौतिक-वैज्ञानिकों का सिद्धान्त बहुत ही दूर-दूर था। कुछ चीजों में परमाणु किस क्रम से स्थान घेरे हुए हैं, रसायनशास्त्रियों ने अपने कुछ ऊंचे और विशेष तजुरुबों के लिए उसका एक चित्र बना रखा था। बहुत से लोग इस चित्र के बारे में आशंका प्रकट कर चुके थे। उन विचारों का महत्त्व इतना ही था कि अगर वे ठीक हुए तो परिणाम भी उनके अनुसार होंगे, इस सीमित और संदिग्ध बयान के कारण लोग उनकी परवाह भी कम ही करते थे। मगर आधी सदी बीतते-बीतते स्थिति बदल गई, क्योंकि भौतिक-वैज्ञानिक एक विभिन्न क्षेत्र में अर्थात् पदार्थ और बिजली की परस्पर क्रिया का तजुरुबा करते, हुए बिल्कुल उसी नतीजे पर पहुँचे जो रसायनशास्त्रियों के विचारों के अनुरूप था। आज अगर कोई किसी

पेचीदा परमाणु की बनावट के बारे में प्रमाण देना चाहे तो वह रसायन और भौतिक-विज्ञान दोनों के तजुरुबों को इस्तेमाल में लाएगा और उन दोनों का बराबर महत्त्व है। सारांश यह है कि शुरू में पदार्थ के परमाणुओं के बारे में रसायनशास्त्रियों और भौतिक-वैज्ञानिकों की धारणाएँ बिल्कुल विभिन्न थीं, लेकिन बाद में वे एक हो गईं। यह अच्छी बात है और हमें इस पर प्रसन्न होना चाहिए और प्रसन्न इसलिए होना चाहिए कि हमारा काम बहुत आसान हो गया है क्योंकि जब हम किसी परमाणु की बनावट की बात करते हैं तो एक ही सेट के अणुओं से काम चल जाता है।

पिछले बीस-तीस साल के तजुरुबों से जबकि चीजों में परमाणुओं की तरतीब के बारे में खयाल स्पष्ट हो गया है, लेकिन खुद परमाणु की बनावट काफी पेचीदा है और उसे समझना सहज नहीं है यहाँ फिर इस सिलसिले में जो तजुरुबे हुए हैं मैं उनका उल्लेख नहीं करूँगा, मैं केवल यह बताऊँगा कि आजकल जो व्याख्या की जा रही है। उसका आम रुझान क्या है। हम संसार की एक सरल व्याख्या चाहते हैं और चन्द साल पहले एक सन्तोषजनक व्याख्या यह कर दी गई कि तमाम परमाणु न्यूट्रोन, प्रोटोन और इलेक्ट्रोन के बने हुए हैं। जहाँ तक परमाणु के भीतरी चित्र का सवाल है वह एक परमाणु का दूसरे से उन अणुओं के अनुपात से भिन्न होता है जिनसे परमाणु का केन्द्रीय भाग बनता है। अणु-शक्ति के लगभग प्रत्येक वर्णन में पदार्थ की बनावट की एक सन्तोषजनक और गुणात्मक व्याख्या की जाती है। दो प्रकार के यूरेनियमों में जो अन्तर होता है वह सहज में देखा जा सकता है। इस प्रकार प्रकाश-क्रिया से धातुओं के अपने आप टूटने की जो क्रिया है, उसे एक चित्र द्वारा समझाना इतना आसान है कि एक रसायनशास्त्री को गन्ने की खाँड और ग्लूकोज का अन्तर समझाना भी इतना आसान नहीं होता। चित्र सचमुच आसान है अगर हम पदार्थ और शक्ति के आपसी सम्बन्ध के बारे में सवाल न पूछें, अगर हम यह पूछने की धृष्टता न करें कि आइंस्टीन की सापेक्षता के सिद्धान्त में प्रकाश कहाँ से आ टपकता है।

अणुओं और परमाणुओं की बनावट में जो समानता है वह कई

स्थान पर भंग होती है। पिछले पाँच-छः साल में जो कठिनाइयाँ उत्पन्न हो गयी हैं और जिन्होंने एक सरल चित्र को पेचीदा बना दिया है उसे दो शब्दों में यों बयान किया जा सकता है कि प्रारम्भिक अणुओं की संख्या बहुत बढ़ गई है। स्थिति को और सरल बनाने के लिए मैं कहूँगा कि अगर परमाणु सिर्फ न्यूट्रोन, प्रोट्रोन और इलेक्ट्रोन का बना हुआ है तो परमाणु के टूटने से सिर्फ यह तीनों निकलने चाहिएँ। मेरे इस बयान में थोड़ा सा हेर-फेर हो सकता है उदाहरण के लिए न्यूट्रोन का पदार्थ और शक्ति की अक्षुण्णता बनाये रखने के लिए इस्तेमाल किया गया है। पदार्थ और अत्यन्त तीव्र गति से घूमने वाले (जिससे बड़ी शक्ति पैदा हो जाती है) अणुओं की परस्पर क्रिया के जो तजुरबे किये गये हैं उनमें नये अणुओं की बाढ़-सी आ जाती है—कम-से-कम एक दर्जन नये अणु पैदा हो जाते हैं। बहुत से हालात में जब परमाणु अपने आप टूटते हैं या तोड़े जाते हैं तो सिर्फ प्रोट्रोन, न्यूट्रोन और इलेक्ट्रोन तीनों ही पैदा होते हैं। इसलिए यह बड़ी परेशानी की बात है कि कुछ और तजुरबों में इनके अतिरिक्त और भी कई अणु पैदा हो जाते हैं। शायद इन अर्थों में गोलियों के डिब्बे में गोलियाँ हैं यह कहना कि परमाणु में यह तीनों अणु हैं दुरुस्त नहीं है। शायद यह उपमा बेहतर होगी जैसे जब मिस्री की डली हथौड़े से तोड़ी जाती है तो वह कण-कण हो जाती है, वैसे ही परमाणु में शायद ये नये अणु पहले से नहीं होते, तोड़ने की क्रिया से उत्पन्न हो जाते हैं। अगर ऐसा ही है तो कुछ तजुरबों में सिर्फ तीन ही अणु क्यों होते हैं? तोड़ने की हर एक क्रिया में विभिन्न अणु क्यों नहीं होते?

ऐसे या इसी प्रकार के दूसरे सवालों से यह संशय उत्पन्न होती है कि परमाणु सम्बन्धी ज्ञान से दुनिया की जो व्याख्या की जाती है वह 'यथार्थ' भी है। लेकिन इस प्रकार के सवाल न सिर्फ उठाये गये हैं बल्कि कुछ (सब नहीं) भौतिक-वैज्ञानिक और साइंस के फिलास्फर बीस साल तक खुल्लम-खुल्ला घोषित करते रहे हैं। जब तक कि परमाणु की भीतरी बनावट का पेचीदा चित्र सामने नहीं आया थे लोग यही कहते थे कि नया भौतिक विज्ञान क्रांतिकारी है। और क्रांतिकारी से उनका

मतलब ऐसा दृष्टिकोण था जो एकदम बदल गया है।

वैज्ञानिक दृष्टिकोण से बदलने का मुख्य कारण प्रकाश के लहर सम्बन्धी सिद्धान्त को अणु सम्बन्धी सिद्धान्त के मुकाबले में तजुरबे से प्रमाणित सिद्ध करने की असफलता है। मैं पहले कह चुका हूँ कि वैज्ञानिकों ने भ्रम पालना सीख लिया है जो पहले उससे सहन नहीं होता था। यह कहना बहतर होगा कि उसे मालूम हो चुका है कि यह भ्रम आम है और गणित और तजुरबे की बहुत सी कठिनाइयों को वह इस भ्रम के कारण सहज में पार कर सकता है। अगर आज एक साधारण व्यक्ति उसे पूछता है कि प्रकाश की किरण अणुओं की बनी हुई है अथवा लहरों की तो एक दार्शनिक स्वभाव का भौतिक वैज्ञानिक कुछ इस प्रकार उत्तर देगा—"इस सवाल से कुछ लाभ नहीं। हम भौतिक वैज्ञानिकों ने यह सवाल उठाना ही छोड़ दिया है। अगर आप जरूर पूछना चाहते हैं तो मेरा उत्तर यह है कि प्रकाश की किरण अणुओं से भी बनी हुई है और लहरों से भी। लेकिन मैं यह भी कहूँगा कि किरण इलेक्ट्रोन अथवा तीव्र गति से चलने वाले अणुओं की बनी हुई है। अगर आप यह समझते हों कि नया भौतिक विज्ञान पुराने की असफलता है तो मैं यह कहना चाहूँगा कि आज हमारे पास तजुरबे के इतने उन्नत साधन हैं कि अणु की अथवा लहरों की पदार्थ पर जो क्रिया होती है, उसे समझ न पाने की अपनी चूक को हम गणित से ठीक-ठीक बता सकते हैं। थोड़े शब्दों में यह विज्ञान की एक नई शाखा है जिसे प्राविधिक विज्ञान के नये साधन भी कहा जा सकता है। इससे भौतिक विज्ञान और रसायन में तजुरबों सम्बन्धी बहुत सी सामग्री जमा हो गई है जो इतनी ही उपयोगी है जितनी कि विज्ञान के इतिहास की कोई उन्नति। इसलिए अगर आपको अपने नीचे का पदार्थ ठोस नहीं जान पड़ता तो यह मत सोचिये कि विज्ञान का विकास रुक गया; स्थिति इसके विपरीत है।"

साधनों में किस प्रकार की क्रांति हुई इसका संकेत (यह संकेत मात्र ही है, देने के लिए मैं प्रकाश और पदार्थ की परस्पर क्रिया को नहीं लूँगा, बल्कि मैं परमाणु का आधुनिक चित्र प्रस्तुत करूँगा। हम कार्बन टेट्रा-क्लोराइड जैसा बहुत ही सादा पदार्थ लेते हैं। एक शताब्दी से कुछ

कम अरसा पहले रसायन-शास्त्रियों का परमाणु सम्बन्धी सिद्धान्त यह था कि हर एक परमाणु में एक कार्बन अणु होता है, जो क्लोरीन के चार अणुओं से घिरा रहता है और चार अणु कुछ इस प्रकार व्यवस्थित होते हैं कि उनसे एक ठोस आकृति बनती है। अब सन् १९५२ में हम यह कह सकते हैं कि भौतिक विज्ञान के साधनों से हम कार्बन परमाणु और चार क्लोरीन परमाणुओं का केन्द्र मालूम कर सकने में समर्थ हैं। लेकिन जब हम यह जानने का प्रयत्न करते हैं कि इलेक्ट्रोन कहाँ हैं, वे कहीं कार्बन और क्लोरीन के अणुओं के बीच छिपे रहते हैं इसलिए उन्हें ढूँढ निकालना सहज नहीं है।

जो चित्र हम खींचते हैं, उसके अनुसार पाँचों अणुओं में निश्चित बिजली होती है, कार्बन के अणु में पाँच, चार और क्लोरीन के हर-एक अणु में सात होते हैं। कार्बन टेट्राक्लोरीड बिजली में तटस्थ होता है, उस में एक प्रकार से कुल मिलाकर ४+(४×७)=३२ इलेक्ट्रोन पाँच परमाणु केन्द्रों के गिर्द बिखरे हुए होते हैं। एक पीढ़ी पहले रसायनशास्त्री अक्सर यह जानने का प्रयत्न करते थे कि एक परमाणु के माडल में ३२ इलेक्ट्रोन कहाँ स्थित हैं। नये प्राविधिक साधनों की महत्ता यह है कि अब हम यह कहने में समर्थ हैं कि किसी भी तजुरबे से इन इलेक्ट्रोन की ठीक-ठीक स्थिति मालूम करना सम्भव नहीं है। वे परमाणु में किस प्रकार बिखरे रहते हैं यह जानने के विविध उपाय हैं, लेकिन सच्ची बात यह है कि अणुओं को बाँधे रखने वाले इन तथाकथित इलेक्ट्रोन को सिर्फ आँकड़ों ही में जाना जा सकता है।

अगर हम अनिश्चितता के प्रसिद्ध सिद्धान्त की अपने अणुओं के केन्द्र मालूम करनी की निश्चितता से तुलना करें और उसे इलेक्ट्रोन की अनिश्चित स्थिति सम्बन्धी अपने विश्वास के प्रकाश में देखें तो श्रोताओं को शिक्षा की दृष्टि से शायद कुछ लाभ हो अथवा नहीं। लेकिन खुद मुझे यह लाभ अवश्य होगा कि मैं साधनों की नई अनिश्चितता का गैसों के गति-सम्बन्धी सिद्धान्त की तनिक पुरानी अनिश्चितता से तुलना कर सकूँगा। यह विचार कि गैस बहुत ही छोटे-छोटे अणुओं की बनी हुई है और यह कि वह बहुत थोड़ा स्थान घेरती है, उन्नीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध

की पैदावार है। गैस के इस चित्र में कि वह तीव्र गति से उड़ने वाले अणुओं का एक समूह है, आँकड़े सम्बन्धी विचार निहित रहता है। इधर-उधर उड़ने वाले या कमरे की दीवारों के साथ मँडराने वाले अकेले अणु की दशा जानने का कोई प्रयत्न नहीं करता, लेकिन जब ऐसे अणुओं की संख्या अधिक हो जाये, तब तो उनके बारे में हिसाब लगाना सम्भव हो जाता है। इस हिसाब से जो सिद्धान्त मालूम हुआ वह उन्नीसवीं सदी के भौतिक विज्ञान और रसायन की बुनियाद बना।

अब आधुनिक साधनोंकी व्याख्या करनेवाले बहुधा लोग गति सम्बन्धी सिद्धान्त के अनुसार गैस के एक अणु की जो अनिश्चितता है और एक परमाणु के भीतर इलेक्ट्रोन की जो अनिश्चितता है दोनों के अन्तर को साफ समझते हैं। कुछ लोग भौतिक वैज्ञानिक के बदले हुए दृष्टिकोण को लोकप्रिय बनाने के लिए इसके विपरीत यह कहते हैं कि अगर दोनों प्रकार की अनिश्चितता एक नहीं, तो उनमें कुछ अधिक अन्तर भी नहीं है। इलेक्ट्रोन सम्बन्धी अनिश्चितता की विशेषता को मानने वाले जो दलीलें देते हैं, वे बहुत ही दिलचस्प हैं। उनका अभिप्राय यह है कि जैसे-जैसे आधुनिक साधनों का विकास होता रहा, वैज्ञानिकों को यह विश्वास होता गया कि सैद्धान्तिक रूप में हर एक अणु की गति का पहले से अनुमान लगाना सम्भव है। अब उनका यह विश्वास है कि ऐसा सिर्फ उन्हीं विशेष सीमाओं में सम्भव है, जो गणित के एक समीकरण द्वारा निर्धारित की जाती है (और समीकरण ऐसी है कि इलेक्ट्रोन जैसी छोटी सी वस्तु के लिए अनिश्चितता बहुत अधिक है,)। शायद यह कहना अधिक गलत नहीं होगा कि वैज्ञानिकों ने सैद्धान्तिक रूप में इसकी जो डिग्री नियत की है, उससे नये साधन क्रान्तिकारी जान पड़ते हैं।

अब देखना यह है कि ब्रह्मांड का जो एक पूरा चित्र बनाना चाहते हैं, उनके लिए नये दृष्टिकोण का महत्त्व क्या है? भौतिक विज्ञान के दर्शन सम्बन्धी परिणामों की व्याख्या करते हुए प्रोफेसर ब्रिगमैन कहते हैं—

"अन्त में मैं उस अत्यन्त क्रांतिकारी अन्तर्दृष्टि की बात कहता हूँ जो भौतिक-विज्ञान में हमारे हाल ही के तजुरबों के फलस्वरूप उत्पन्न हुई है। गैलीलियो और न्यूटन अथवा डार्विन की खोजों से अन्तर्दृष्टि उत्पन्न हुई थी यह निश्चय ही उससे अधिक क्रांतिकारी है।··· नया दृष्टिकोण यह है कि प्रकृति की बनावट ऐसी हो सकती है कि हमारा विचार पूर्णरूप से इसका अनुमान लगाने में असमर्थ है। हमें ब्रह्मांड में छोटे-छोटे अणुओं के व्यवहार ही से इसका परिचय मिल चुका है··· इन तुच्छ अणुओं की दिशा सम्बन्धी जो विकट समस्या हमारे सामने आ खड़ी हुई है, उसमें मतभेद की गुंजायश नहीं है। अब हम ऐसी सीमा पर पहुँच गये हैं जहां हमें हमारा कृत कार्य आगे की बात मालूम करने से रोक देता है और इसका कारण दुनिया की बनावट नहीं, हमारी अपनी बनावट है। दुनिया अलोप होने लगती है और हमें धोखा देती है, क्योंकि वह निरर्थक जान पड़ती है। हम इसे उपयुक्त शब्दों में व्यक्त भी नहीं कर सकते। हमारे अब तक का जो ज्ञान है उसके आधार पर हम यह भी नहीं कह सकते कि हमारी जानकारी से परे भी एक दुनिया है। दुनिया के अस्तित्व का विचार ही अर्थहीन मालूम होता है। इसकी प्रतिक्रिया यह होती है कि कुछ न जाना जाय। हमारा जिसका सामना है, वह सचमुच अकथनीय है। विज्ञान के प्रारम्भिक महान् नेताओं ने जो स्वप्न देखा था, हम उसकी सीमा पर पहुँच गये हैं। स्वप्न यह था कि हम एक सहृदीय संसार में रह रहे हैं और उसे अपने हृदय ही में जाना जा सकता है।"

लन्दन के प्रोफेसर डिंगल ने लिखा है—"सत्रहवीं सदी में विज्ञान की जो परम्परायें स्थापित हुई थीं, जो लोग उन्हें आगे बढ़ा रहे थे उन्होंने अपने कर्त्तव्य को सचाई और निष्ठा से किया, लेकिन वे सारा समय सोचते यह रहे कि हम इन परम्पराओं के अतिरिक्त और कुछ कर रहे हैं। बीसवीं सदी में जो इन्क्लाब आया वह सिर्फ यह है कि उसमें साइंस क्या थी और क्या है की गलत धारणा को खत्म कर दिया। साइंस गैलीलियो से लेकर न्यूटन और आइंस्टीन तक होती हुई हमारे अपने समय तक एक ही पथ पर चलती रही है।"

"अर्द्ध उन्नीसवीं सदा के वैज्ञानिक इस विचार के अनुसार क्या कर रहे थे, डिंगल अपनी वात जारी रखता है, "वे एक वास्तविक बाहरी भौतिक संसार के पीछे दौड़ रहे थे और उसकी भौतिक वस्तुओं को उनके आकार और वज़न से माप रहे थे...इस प्रकार उन्हें जो ज्ञान प्राप्त हुआ—अक्सर अनजाने ही उन नित्य और अटल सिद्धान्तों के सुराग मिल गये, जो संसार की गतिविधि का आधार समझे जाते हैं। इससे मालूम हुआ कि जैसे-जैसे समय वीतता है, दुनिया एक के बाद दूसरी स्थिति में प्रकट होती है और हर एक नई स्थिति अपने से पहले की स्थिति से एक अक्षुण्ण आवश्यकता अविच्छेद सम्बन्ध द्वारा जुड़ी होती है। इसे कारण और परिणाम का सिद्धान्त कहा गया...

"जनसाधारण की भापा में हम यह कह सकते हैं कि विक्टोरियन युग के वैज्ञानिक विज्ञान की प्रगति को संचय का एक तरीका मानते थे।... आज हमारा विचार उनसे वहुत भिन्न है...अन्तर्सम्बन्धों को व्यक्त करने के लिए हम सम्पूर्ण का जो चित्र वनाते हैं, वह सतत वदलता रहता है... हम यह नहीं कह सकते, दुनिया ऐसी है या वैसी है। हम सिर्फ यह कह सकते हैं, आज की दुनिया हमारे तजुरुबे को भली भाँति प्रस्तुत करती है। कल की दुनिया क्या होगी यह हमें मालूम नहीं, लेकिन यह तय है कि वह आज से कहीं अधिक तजुरुबे को प्रस्तुत करेगी।

विज्ञान के इतिहास की इस व्याख्या के अनुसार उन्नीसवीं सदी के भौतिक वैज्ञानिक समझते थे कि वे इस भौतिक संसार के बुनियादी कानून मालूम कर रहे हैं। प्रोफेसर डिंगल के शब्दों में यह वात यों कही जा सकती है...वे तजुरुबे की दुनिया को समझने के काम की शुरूआत करने वालों से कुछ ही आगे थे। फिर भी वर्त्तमान की अतीत से तुलना करते हुए यह समझ लेना आवश्यक है कि अपने काम के बारे में उन्नीसवीं सदी के सभी वैज्ञानिक एकमत नहीं थे। इस सम्बन्ध में अर्नेस्ट माश का नाम लिया जा सकता है जिसके दृष्टिकोण पर हमारे अपने समय में प्रयोगवादियों ने अपना सिद्धान्त निर्धारित किया है। इससे जाहिर है कि वीसवीं सदी के कुछ वैज्ञानिकों को इस वात पर सन्देह था कि भौतिक संसार के स्वभाव को हमेशा के लिए निश्चित किया जा सकता है। पी० जी० टेट

ने 'भौतिक विज्ञान की कुछ आधुनिक प्रगति' पर भाषण देते हुए कहा था—"यह कहने से अधिक मूर्खतापूर्ण अवैज्ञानिक वात और नहीं हो सकती कि साइंस जो नयी-नयी वातें मालूम कर रही है, उससे हम पदार्थ के कतई स्वभाव को समझने के निकट पहुँच गये है।" जे० जे० थामसन जैसे रूढ़िवादी वैज्ञानिकों ने सन् १९०७ में जव अपनी पुस्तक 'कार्पस्कुलर थ्योरी आफ मैटर' छपवाई तो उसकी भूमिका में यही विचार व्यक्त किया। उसने लिखा कि "मेरे सिद्धान्त को अन्तिम न समझा जाय। इसका उद्देश्य आध्यात्मिक नहीं, भौतिक है।" और उसने यह महत्त्वपूर्ण शब्द लिखे, "एक भौतिक वैज्ञानिक की दृष्टि से पदार्थ सम्बन्धी सिद्धान्त असूल नहीं नीति है। उसका उद्देश्य विभिन्न घटनाओं में तालमेल पैदा करना और तजुरुवे को आगे वढ़ाना है।"

अगर मैं नये भौतिक विज्ञान के दार्शनिक महत्त्व को एक वाक्य में कहना चाहूँ तो मुझे सर जे० जे० थामसन ही के शब्द दोहराने पड़ेंगे। जो लोग वैज्ञानिक सिद्धान्त को नीति मानते हैं उनके लिए वीसवीं सदी ने अनुभव की काफी सामग्री जुटा दी है और पदार्थ के किसी एक सिद्धान्त को नियम मान लेना असम्भव वना दिया है। नीति सदा कर्म में हमारा पथ-प्रदर्शन करती है। आज विज्ञान सम्वन्धी जितनी व्याख्यायें प्रचलित हैं, मैं समझता हूँ कि उनमें से वे अधिक उपयोगी हैं, जो विज्ञान की परिवर्तनशीलता को सिद्ध करती हैं। मुझे मालूम हैं किऐसे फिलासफरों की कमी नहीं जो जानने और करने में वड़ा अन्तर वताते हैं और उस तमाम फलसफे को सन्देह की दृष्टि से देखते हैं। जिसका आशय सत्य की खोज किसी एक व्यावहारिक तरीके से बाँध देना है। लेकिन कम-से-कम मेरा अपना खयाल है कि जव हम विज्ञान सम्वन्धी किसी बयान की जाँच अथवा परख करने लगते हैं तो तुरन्त तजुरुवे की कई दिशायें सामने आ उपस्थित होती हैं। इसलिए मैं विज्ञान की यह परिभाषा करना पसन्द करूँगा कि वह परस्पर सम्बन्धित विचारों, अनुभव और निरीक्षण से उत्पन्न होने वाली विचार सम्बन्धी योजनाओं का एक क्रम है और जो आगे के अनुभवों और निरीक्षणों के लिए उपयोगी है। मेरे खयाल में एक वैज्ञानिक सिद्धान्त की परख उसकी उपयोगिता है और सर जे० जे० थामसन के

शब्दों में तजुरुबे को तेज करने और आगे बढ़ाने की उसकी योग्यता है।

अट्ठारहवीं और उन्नीसवीं सदी की वैज्ञानिक खोजों के बारे में जो भ्रांति पाई जाती है उसका कारण गलत उदाहरण है। जो यह कहते थे कि हम दुनिया की बनावट की खोज लगा रहे हैं, अपने आपको अपने से पहले के अन्वेषण करने और नक्शा बनाने वालों के बराबर समझते थे। पंद्रहवीं-सोलहवीं सदी के अन्वेषण करने वालों ने अधूरे नक्शों की मदद से नई दुनिया मालूम की थी। दूरस्थ देशों के उन्होंने जो वृतांत लिखे उनमें कुछ गलत और अस्पष्ट बातें भी थीं। लेकिन जब सबको यह मालूम हो गया कि दुनियां गोल है, दूरस्थ द्वीपों के नक्शे एक ही नमूने के बनने लगे। सत्रहवीं सदी तक स्थान और समय मापने के ढंग मालूम हो जाने से ठीक भूगोल की बुनियाद पड़ गई। प्रयोग-ज्ञान की बढ़ती हुई सफलता से कारीगरों के काम की जो उन्नति हो रही थी उससे मनुष्य का निरीक्षण भी दुरुस्त होता जा रहा था। इसलिए लगातार अन्दाजों से दूरस्थ देशों के वृतांत वास्तविकता के निकट से निकटतर पहुँचते गये। जो लोग प्रयोगशालाओं में काम करते थे उनके परिश्रम के परिणाम भी ऐसे ही क्यों न निकलें? इसमें किसी को सन्देह नहीं था कि वास्तविक नदियां, पहाड़ और पेड़ हैं, बर्फ पड़ती है और ग्लेशीयर बनती हैं। संदेह अगर था तो किसी विशेष नक्शे अथवा वृतांत के बारे में, लेकिन यह विश्वास था कि समय और धैर्य की अवश्य ही सच्चाई मालूम हो जायेगी। इसी उदाहरण से उष्णता, प्रकाश और पदार्थ के स्वभाव के बारे में भी सच्चाई मालूम होकर रहेगी।

नक्शे बनाने वाले दृढ़ निश्चय होने के लिए पहाड़ों, पेड़ों, नदियों और चट्टानों आदि स्थूल वस्तुओं का निरीक्षण करते रहे जबकि विज्ञान की उन्नति के साथ-साथ गुरु आकर्षण, और अणु और ईथर की लहरें भौतिक-वैज्ञानिकों के अध्ययन का विषय बनती गई। फिर भी दोनों क्षेत्रों में प्रयोग सम्बन्धी विचारों का महत्त्व बराबर रहा। काम शुरू करने के आधार के रूप में नदी के पाट, झील के स्रोत और पहाड़ की सीमा को वही दर्जा प्राप्त रहा जो उष्णता सम्बन्धी तापमान का अथवा अणु सम्बन्धी प्रकाश के प्रारम्भिक सिद्धान्त का। भूगोल वालों के शुरू

में जानकारी चीजों के पहचान और परख के लिए विशेषतः सहज बुद्धि से काम लेते थे। बाज निरीक्षण गलत भी हो सकते थे। लेकिन कई बार गलत निरीक्षण भी उपयोगी सिद्ध होते हैं। यह फर्ज करके चलना कि फलां पहाड़ से परे एक झील है, अगर वहां झील न भी हो तो अन्वेषण करने वाले को कुछ और महत्त्वपूर्ण बातें मालूम हो सकती हैं।

गलती की सम्भावना समस्त प्रकार के निरीक्षणों में रहती है। वास्तव में आदमी ऐसी स्थिति की कल्पना कर सकता है, जिसमें भूगोल में भी कतई निश्चितता की सम्भावना नहीं होती। फर्ज कीजिए कि, एक ऐसा द्वीप है जो चारों तरफ से समुद्री चट्टानों से घिरा हुआ है, जिसमें विशेष सामान और साधनों के बिना जाना मुमकिन नहीं है और अब एक ऐसा अन्वेपण करने वाला फर्ज कीजिए जिसके पास ये साधन नहीं हैं। वह द्वीप को दूरबीन की सहायता से विभिन्न कोणों से देखकर ही सन्तुष्ट हो जायेगा और फिर एक ऐसा नक्शा तैयार करेगा जिसमें बहुत सी अनिश्चितताएँ होंगी। उदाहरण के लिए द्वीप में जो रंगदार स्थान हैं क्या वह चट्टानों के कारण हैं अथवा वनस्पति के? फिर वह उचित सामान के साथ लौटता है और द्वीप पर उतर कर उन स्थानों को देखने जाता है तब उनके रंगदार होने का उसे असल कारण मालूम होता है। अगर उसके दोबारा जाने से पहले ही द्वीप समुद्र की तह में डूब जाये, तो इससे उसके साधनों की योग्यता में कोई अंतर नहीं आता। हम कह सकते हैं कि सैद्धान्तिक रूप में वह द्वीप पर जा सकता था और उन स्थानों के बारे में सही ज्ञान प्राप्त कर सकता था।

यह 'सैद्धान्तिक रूप में' की युक्ति का इस्तेमाल ही उन्नीसवीं सदी के *भौतिक वैज्ञानिकों के इस विश्वास का आधार था, कि गैस तीव्र गति* से घूमने वाले अणुओं से बनी है जिसका अब भी यह ख्याल है कि दुनिया की एक बनावट है, जो एक द्वीप के भूगोल की भांति साधनों की लगातार उन्नति से ठीक-ठीक मालूम की जा सकती है। वे 'सैद्धान्तिक रूप में' की युक्ति पर दृढ़ रहेंगे। जब उन्हें फ्लोजिस्टन सिद्धान्त और ईथर के प्रकाश सम्बन्धी सिद्धान्त का, जो अब पुराने और अप्रचलित (सिवाय शिक्षा सम्बन्धी उद्देश्यों के) हो गये हैं,

उदाहरण दिया जाता है, तो वह कहते हैं "हाँ, शुरू के नक्शे अपूर्ण थे, लेकिन सैद्धान्तिक रूप में दुनिया की बनावट के वास्तविक रूप का पता चलाना सम्भव है।"

विज्ञान के फ़िलासफरों में इस बुनियादी सवाल पर बहुत भारी मतभेद है। तुम किसी का भी पक्ष ले सकते हो और जो पक्ष भी आपने लिया है, उसी के समर्थन में दलीलें देने वाले प्रसिद्ध और धुरंधर पंडित तुम्हें मिल जायेंगे। मगर भौतिक-विज्ञान सम्बन्धी दृष्टिकोण में जो क्रांति आ चुकी है उसका महत्त्व यह है कि जो कोई भी यह कहता है कि विज्ञान विश्व की खोज है, उसे इसका प्रमाण जुटाने की जिम्मेदारी अपने कंधों पर लेनी होगी। मैं समझता हूँ कि वैज्ञानिक को नक्शा बनाने वाले के स्तर पर रखना गलत है। एक वैज्ञानिक सिद्धान्त अनुमान से पहला नक्शा बनाने के बराबर नहीं है। यह एक असूल नहीं, एक नीति है—वैज्ञानिक अन्वेषण करने वालों की ओर से एक उपयोगी पथ-प्रदर्शक है।

कहीं मेरी शंकाएँ चित्र को अनुचित ढंग से विकृत न कर दें। इस लिए मैं यह बताना पसंद करूँगा कि नये भौतिक-विज्ञान और रसायन की पुरानी धारणाओं को बहुत कम तब्दील किया है और मैं यह भी बताना जरूरी समझता हूँ कि जहाँ तक तजुरुबे का सम्बन्ध है नया भौतिक-विज्ञान एक अच्छी नीति सिद्ध हुआ है। लोग अगर परेशान हैं तो उन कठिनाइयों से जो नक्शा बनाने वाले के उदाहरण को स्वीकार कर लेने से उत्पन्न होती हैं। इससे ऐसा लगता है जैसे आधुनिक वैज्ञानिक उस अन्वेषण करने वाले के सदृश हो, जिसे इस बात का विश्वास नहीं कि दूर से जो रंगदार स्थान मद्धम दिखाई पड़ते हैं वे चट्टानें हैं या पेड़। द्वीप में पहुँचने पर मालूम होता है कि चट्टानें भी हैं और पेड़ भी। लेकिन यह उदाहरण गलत है। यह कहना कहीं बेहतर होगा कि वैज्ञानिक उस अन्वेषणकर्त्ता की स्थिति में है, जिसे दूरस्थ द्वीप पर उतरने की जरूरत ही नहीं पड़ती। सारांश यह है कि नक्शे बनाने वाले और वैज्ञानिक सिद्धांत को एक दूसरे से उपमा देना सर्वथा निराधार है।

मैं जो दृष्टिकोण प्रस्तुत कर रहा हूँ उस पर एक एतराज यह हो

सकता है कि अगर वैज्ञानिक सिद्धान्त दुनिया के एक भाग के नक्शे के लगभग बराबर नहीं है, तब विशुद्ध विज्ञान की तथाकथित उन्नति खेल के अतिरिक्त कुछ नहीं, जिसका मतलब यह होगा कि विज्ञान की परख सिर्फ व्यावहारिक कलाओं पर लागू करने से हो सकती है। उत्तर यह है कि इस प्रकार का एतराज करने वाले एक गणितशास्त्री, एक कवि, एक चित्रकार और एक संगीतकार के काम को जेहन में लायें। मेरे खयाल में पिछले साढ़े तीन सौ साल में जो वैज्ञानिक सिद्धान्त मालूम हुए हैं, उनका महत्त्व वही है जो इतिहास के महान् युगों में उत्पन्न होने वाली कला और संगीत का है। मैं समझता हूँ कि अधिकांश वैज्ञानिक सृजन में जो विशुद्ध प्रसन्नता प्राप्त करते हैं वही उसकी परख है। वे भी वही सुख अनुभव करते हैं जो कलाकार अपनी कल्पना में अनुभव करता है। रचनात्मक कार्य के सिलसिले में अतीत में जो सफलता प्राप्त हुई किसी हद तक सभी लोग उसकी सराहना करते हैं और वे उस सफलता को भौतिक पैमाने से नहीं मापते। इसी प्रकार सन् १६०० से १९५० तक विज्ञान की जो उन्नति हुई, उसे सृजन-शक्ति की विजय समझना चाहिए। यह उन स्त्रियों और पुरुषों की महान् सृजन-शक्ति का परिचय देती हैं जिन पर हम मानव जाति के सदस्य होने के नाते गर्व कर सकते हैं।

हम लोगों पर जो विज्ञान के सभी सिद्धान्तों को नीति मानते हैं दूसरा एतराज यह हो सकता है कि हमारा दृष्टिकोण सिर्फ एक आकस्मिक सामाजिक स्थिति है। यह स्वीकार करना पड़ता है कि शायद प्राइमरी स्कूल में जो बच्चे पढ़ रहे हैं, वे अपने जीवन के मध्य में यह महसूस करें कि दुनिया का एक चित्र जो वास्तव में कोई चित्र नहीं है, एक संतोषजनक माडल-मात्र है। लोगों को यह विचार स्वीकार करने में सदियों लग गईं कि गुरुत्वाकर्षण शक्ति बिना किसी माध्यम के ही चीजों को दूर से खींचता है। निश्चय ही सापेक्षता के सिद्धान्त और नये साधनों को आज जो स्थान प्राप्त है सन् २०५२ के सामूहिक विज्ञान में यह स्थान एकदम बदल जाएगा। जब ये विचार युग की संस्कृति का अंग बन जायँगे तो यह धारणा कि विज्ञान दुनिया की बनावट की खोज है, मनुष्यों के मस्तिष्क में फिर अपना दृढ़ स्थान बना लेगा।

मगर भविष्य में मैं अपना दाँव दूसरे घोड़े पर लगाता हूँ। मुझे यह स्पष्ट जान पड़ता है कि आज से पचास साल पहले एक साधारण व्यक्ति को जिस ढंग से विज्ञान समझना पड़ता था, एक आम शहरी विज्ञान को उससे बिलकुल ही अलग ढंग से समझने लगेगा। विज्ञान को हमारे बीसवीं सदी के अत्यन्त उन्नत औद्योगिक समाज का अंग बनाने के लिए जरूरी है कि हम वैज्ञानिक सिद्धान्तों को इंसानी अमल का सहायक समझें और यह समझें कि इससे सहज बुद्धि का विकास होता है। मैंने अपने भाषणों में यही दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है। जो लोग विज्ञान और मानव चरित्र में दिलचस्पी रखते हैं अगले दो भाषणों में उनके लिए इस दृष्टिकोण के कुछ परिणामों पर प्रकाश डाला जाएगा।

तीन

विज्ञान और मानव-चरित्र

इस सिलसिले के पहले दो भाषणों में मैंने इस शताब्दी में विज्ञान और प्राविधिक विज्ञान के इतिहास के कुछ पहलुओं पर प्रकाश डाला है। इस भाषण में मैं यह दिखाने का प्रयत्न करूँगा कि भौतिक विज्ञान में जो क्रांति हुई, उसका मानव-चरित्र पर क्या प्रभाव पड़ा। मगर मैं यह बात पहले ही से स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि मानव चरित्र विज्ञान (अगर कोई ऐसा विज्ञान होता है) अथवा मानव स्वभाव विज्ञान मेरे इस भाषण का विषय नहीं है। मनोविज्ञान और समाज-विज्ञान में जो उन्नति हुई उसका सिंहावलोकन भी इसमें नहीं होगा। न सिर्फ इसलिए कि ऐसा करने की न मुझ में योग्यता है और न मेरी आकांक्षा है, बल्कि इसलिए कि अपने पिछले दो भाषणों में मैंने जो समस्यायें उठाई हैं, इसका उनसे कोई सम्बन्ध नहीं होगा।

अपने पहले भाषण में मैंने अपने समय की इस सामाजिक स्थिति की बात कही कि वैज्ञानिक आविष्कारक बन गया है। अपने दूसरे भाषण में मैंने भौतिक-विज्ञान की उस तथाकथित क्रांति का संक्षेप में जिक्र किया, जिससे बहुत से लोगों के मन में उस काम के बारे में शंकाएँ उत्पन्न हो गई हैं, जो वैज्ञानिक कहते हैं कि हम कर रहे हैं। पच्चास या पचहत्तर साल पहले यह समझा जाता था कि वैज्ञानिक प्रकृति के नियम मालूम कर रहा है, और आविष्कार करने वाला उन नियमों को व्यावहारिक रूप देकर लाभ उठा रहा है। पुराने ढंग का आविष्कारकर्त्ता अब नहीं रहा। जिन्होंने कभी विज्ञान को लोक-प्रिय बनाया उनकी बुनियादी मान्यताओं को अब चुनौती दी जा रही है। अपने इस भाषण और अगले भाषण में मैं यह दिखाने का प्रयत्न करूँगा कि नये वैज्ञानिक विचारों का उस जीवन-दर्शन के लिए

क्या महत्त्व है जो विचारशील स्त्रियों और पुरुषों के नित्य के फैसलों में सहायक होता है।

विज्ञान के सम्बन्ध में दो तरह के भ्रम पाये जाते हैं, एक यह कि वैज्ञानिक को जादूगर समझा जाता है और दूसरे उसे गणितशास्त्री समझते हैं। दूसरी के कारण कुछ ऐसी भ्रांतियाँ पैदा हो गई हैं कि विज्ञान की दुनिया और मूल्यों की दुनिया को बिल्कुल एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न समझा जाता है। जब एक ही वाक्य में विज्ञान और 'सत्य' एक साथ इस्तेमाल होते हैं तो अनायास ही स्कूल के दिनों के यूकिल्ड और क्यू० इ० डी० के सिद्धान्त स्मरण हो आते हैं। आम दार्शनिक दृष्टिकोण के अनुसार जिसे मैं अपने भाषणों में प्रस्तुत कर रहा हूँ, रेखागणित के प्रस्तावों की सचाइयाँ उनकी प्रस्तावना में निहित होती हैं। हिसाब द्वारा उसे जो हल किया जाता है अथवा दलील दी जाती है, वह एक ही बात को दूसरे शब्दों में दोहराने के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। लेकिन साथ ही मैं यह भी कहूँगा कि यह दूसरे शब्दों में दोहराने की बात भी वैज्ञानिकों के लिए काफी महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि विचारों की दुनिया में जो सिद्धान्त महज़ बयान किये जाते हैं, वे कुछ अन्दाजों से वैज्ञानिक के अनुभव की दुनिया पर भी लागू किये जा सकते हैं।

गणित का कोई सवाल निकालना, उन तजुरबों को दोहराना जिनकी व्याख्या आम तौर पर स्वीकृत हो चुकी है, ऐसे क्षेत्रों में हिसाब लगाना जहाँ प्रयोग ज्ञान की मात्रा कम है, ऐसी सरगर्मियाँ हैं, जिन्हें हम उन सरगर्मियों से विभिन्न समझते हैं जो दो राष्ट्रों में सन्धि कराने अथवा दो फर्मों में मुआहिदा करने अथवा एक मित्र को सांत्वना देने के लिए दरकार हैं। आम तौर पर यह कहा जाता है कि पहली किस्म की सरगर्मियाँ विज्ञान है और दूसरी मानव-व्यवहार जिसमें नीति, आचार, आदर्श और आध्यात्मिक बातें शामिल हैं। मैं समझता हूँ कि ऐसे बयान बुनियादी तौर पर गलत हैं। मैंने जो सरगर्मियाँ गिनवाई हैं, विज्ञान नहीं हैं। वे या तो मंतिक के पाठ हैं, या फिर ऐसी सरगर्मियों को दोहराना है, जो कभी विज्ञान की प्रगति के लिए महत्त्वपूर्ण थीं,

या कुछ व्यावहारिक कामों के लिए मानसिक अभ्यास हैं और वे भी साधारण विज्ञान तो वह शक्तिमान कार्य है जो इस उद्देश्य से किया जाता है कि समस्याओं के हल में प्रयोग ज्ञान की मात्रा को कम किया जाये। दूसरे शब्दों में इसी बात को यों भी कह सकते हैं कि परीक्षणों और निरीक्षणों से जो विचार और विचार सम्बन्धी योजनाएँ उत्पन्न होती हैं और उनमें जो जाले गुथे रहते हैं विज्ञान का काम उन्हें अलग करना और उन्हें आगे के परीक्षणों और निरीक्षणों के लिए उपयोगी बनाना है।

जैसा कि मैं अपने पिछले भाषणों में दिखा चुका हूँ कि विज्ञान एक ऐसी सरगर्मी है, जिसके नतीजे हमारी सहज बुद्धि का भाग बन चुके हैं। वैज्ञानिक विचार हमारी संस्कृति में मर्दों और औरतों के रहन-सहन का इतना अधिक अंग बन चुके हैं कि वे जाने-अनजाने हमारे नैतिक और व्यावहारिक फैसलों पर अपना असर डालते हैं। प्रयोगशालाओं में वैज्ञानिकों की जो सरगर्मियाँ हैं वे सोचे-समझे मूल्यों पर निर्धारित होती हैं। कम-से-कम मेरी अपनी धारणा यह है और उसी को मैं प्रस्तुत कर रहा हूँ।

वैज्ञानिकों के विचार और विचार सम्बन्धी योजनायें (जैसे परमाणु-शक्ति का सिद्धान्त) अनुसंधान करने वालों के लिए वही काम देती हैं जो 'सहज बुद्धि के विचार' साधारण जीवन में अक्सर लोगों के देते हैं। हमारे दैनिक जीवन में नियम और विचार कुछ इस ढंग से आपस में मिल-जुल गये हैं कि उनके आरम्भ के बारे में कोई विचार न करना हमारी आदत बन गई है और इस आदत के सहारे हम चलते रहते हैं। जैसे ही हम अपने इर्द-गिर्द की चीजों के बारे में सोचना शुरू कर देते हैं तैसे हमारे मस्तिष्क में बहुत से विचार (सहज बुद्धि के विचार) उठने लगते हैं। यह प्रायः मेहनत और गलतियों के नतीजे के तौर पर हम तक पहुँचे हैं। कोई आकस्मिक घटना घटित हो जाये तो इनमें से बहुत से विचार हमारी रहनुमाई के लिए सामने आ जाते हैं। सिर्फ दार्शनिक उनके उद्‌गम का विश्लेषण करते हैं और उचित-अनुचित के बारे में सोचते हैं। प्रकृति की एकरूपता भी सहज-बुद्धि के इन विचारों में से एक है।

हमारे दैनिक जीवन में इन विचारों के सम्बन्ध में शंकाओं का कोई स्थान नहीं। बूचड, नानबाई और मोमबत्ती बनाने वाले को जिस दुनिया में वह काम कर रहा है, उसकी एकरूपता का भौतिकी ढंग से चाहे कोई ज्ञान न हो, लेकिन उसे यह विश्वास है कि जिन नियमों के अनुसार वह सारी उम्र अपना काम करता रहा है, कल भी कर सकता है।

सहज-बुद्धि की दुनिया केवल अधूरी एकरूपता है। हम जानते है कि इसमें ऐसे क्षेत्र भी हैं जहाँ अनिश्चितता है—मौसम इसका एक स्पष्ट उदाहरण है जिसकी दिन और रात की नियमितता के साथ तुलना की जा सकती है। अधूरी एकरूपता की दुनिया में काम करने के लिए हमें तजुरुबे के असूल दरकार हैं। और ऐसे असूलों का आविष्कार और उनसे सम्बन्धित भावुक विचार सभ्यता के विकास के लिए बहुत ही महत्त्वपूर्ण हैं। बहुत समय पहले जब आँकड़ों का विचार उत्पन्न नहीं हुआ था आदि मनुष्य ने तीन दिशाओं वाली दुनिया की कल्पना की थी। कुछ ठोस वस्तुएँ थीं जो देखी जा सकती थीं, स्पर्श की जा सकती थीं और पाँव से ठुकराई जा सकती थीं और परछाइयाँ थीं, जो देखी तो जा सकती थीं, लेकिन न स्पर्श की जा सकती थीं और न ठुकराई जा सकती थीं। प्रकृति के बारे में तजुरुबे से जो असूल मालूम हुए उन्हें आपस में बाँधने के लिए काल्पनिक विचारों की सृष्टि हुई। ब्रह्मवाद और देवमाला (पौराणिक कथाएँ) इन्हीं विचारों के नतीजे हैं। मैं जो दृष्टिकोण यहाँ प्रस्तुत कर रहा हूँ, उसके लिहाज से यही विचार वाद के अफलातून के नियमों और उष्णता के तरल पदार्थ और ईथर के प्रकाश की लहरों सम्बन्धी वैज्ञानिक सिद्धान्तों का मूलरूप समझे जा सकते हैं।

मानव-व्यवहार को निश्चित करने में सहज बुद्धि के विचार और वैज्ञानिक विचार आपस में इतने गड-मड हो गये हैं कि आज यह बताना सम्भव नहीं हैं कि कहाँ कौनसा शुरू होता है और कहाँ दूसरा खत्म होता है। एक सभ्य मनुष्य अपने इर्द-गिर्द जो मशीनरी देखता है, वह इतनी प्रत्यक्ष बात है कि वह उसके बारे में सोचने की जरूरत ही नहीं समझता। यही बात आदि-मनुष्य की उन आदतों के बारे में सच है जो

उस समय पड़ गई जब पुरानी दुनिया को सुख और आराम के आधुनिक साधन मालूम नहीं थे। हम अपनी भोजन और स्वास्थ्य सम्बन्धी आदतों पर विचार करें। एक-दो दिन के लिए अपने ही आचरण पर विचार कीजिए और एक सूची बनाने का प्रयत्न कीजिए कि कितने ऐसे फैसले हैं कि जो अर्द्ध-चेतना ही में पिछले सौ साल की विज्ञान की खोजों के कारण हुए हैं। ऐसे बहुत से उदाहरण मिलेंगे जो मेरे दृष्टिकोण की व्याख्या कर देंगे और फैसलों की निश्चितता अवश्य ही आधुनिक-विज्ञान से उनका सम्बन्ध जोड़ने के बाद तय होगी।

अपनी आखिरी बात पर मैं कुछ और प्रकाश डालना चाहता हूँ, क्योंकि मैं समझता हूँ कि यह काफी महत्त्वपूर्ण है। खाने के बारे में हमारा आचरण वैज्ञानिक सिद्धान्तों से कहीं अधिक हृदयगत भावनाओं से सम्बन्धित है। स्वस्थ-से-स्वस्थ व्यक्तियों को भी जब यह बताया जाता है कि उन्होंने अपने नियमित भोजन के बाहर कोई चीज खाली है तो उन्हें कै होने लगती है। मेरे एक मित्र के भारतीय गाइड को सिर्फ यह देखकर कै आ गई थी कि मेरा वह भ्रष्ट मित्र मेंढक की टाँगें खा रहा है। आप चाहें तो इसे असभ्य व्यक्ति का आचरण कह सकते हैं। लेकिन अत्यन्त सभ्य मनुष्य के भी संस्कारों को बदलने के लिए लगातार शिक्षा की जरूरत है। मैं नहीं कह सकता कि उक्त भारतीय गाइड के जो संस्कार थे, उनका आधुनिक विज्ञान से सामंजस्य उत्पन्न करने के लिए अनुभव की कितनी मात्रा दरकार है। मुझे इस बात में सन्देह है कि जब एक वैज्ञानिक को यह विश्वास हो जाये कि उसने बहुत से मृत जीवाणु निगल लिये हैं तो उसे तुरन्त कै हो जायेगी। मेरा ख्याल है कि वह मैदे में पिचकारी लगवायेगा। आपको यह सब बातें बेकार जान पड़ती होंगी, लेकिन विभिन्न प्रकार के संस्कारों को समझने के लिए इनका बड़ा महत्त्व है। मनोवैज्ञानिक और मानसिक रोगों के चिकित्सक यदि इस क्षेत्र में अधिक अन्वेषण करें तो उनके लिए बहुत लाभकारी हैं। जो लोग मानसिक रोगों की दवा देते हैं उन्होंने इस दिशा में काफी काम किया है। इन संस्कारों का हमारे नैतिक फैसलों और धार्मिक विचारों पर क्या प्रभाव पड़ता है, इस विषय को मैं अपने

अंतिम भाषण में लूंगा।

आज के भाषण में मैं मानव-व्यवहार के सिर्फ उन फैसलों को लूंगा जो काफी संतुलित मालूम होते हैं, जिनमें भावुक संस्कारों की प्रतिक्रिया का कोई दखल नहीं है, जिन्हें हम बुदि के फैसले कह सकते हैं। इनमें घटिया किस्म का पैट्रोल खरीदने के बजाये बढ़िया किस्म के पेट्रोल खरीदने के फैसला से लेकर अणु-बम पर रोक लगाने वाले बयान पर हस्ताक्षर करने तक के फैसले शामिल हैं। या अगर आप इस बहुत ही औद्योगिक दुनिया में किसी जिम्मेदारी के पद पर हों तो शायद आपको किसी इमारत, किसी कारखाने अथवा नई मशीन के लिए प्रस्तावित कर्जे के लिए हाँ या ना में वोट करना पड़े।

यह एक आम गलतफहमी है कि अगर वैज्ञानिक अथवा प्राविधिक मामलों पर वात कर रहे हो तो उसमें मूल्यांकन का प्रश्न उठता है तो वहुत ही कम। हमें प्रायः वताया जाता है कि विज्ञान में तथ्य खुद वोलते हैं। जो वैज्ञानिक अनुसंधान की दिशा और उसकी उन्नति से परिचित है, वह इसे वकवाद समझता है। असल वात यह है कि बहस का क्षेत्र एक हद तक परिमित हो जाता है। उदाहरण के लिए किसी वस्त्र-निर्माण की नई प्रक्रिया का सुझाव देने वाला अपने प्रस्ताव के पक्ष में प्लाटो अथवा अरिस्टाटल (अरस्तू) को उद्धृत नहीं करेगा। न ही वह किसी हाईकोर्ट के फैसलों अथवा स्वतन्त्रता-घोषणा पत्र में घोषित किये गये आदर्शों का सहारा लेगा। लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि जो कुछ प्रस्तावित किया गया है वह वहस का विपय नहीं है। इसका मतलब सिर्फ यह है कि जो लोग बहस में हिस्सा ले सकते हैं, उनकी संख्या वहुत ही सीमित है और यह एक ऐसा सत्य है जो हमारे स्वतंत्र-समाज मुसीवत का कारण वनती है। वास्तवमें आधुनिक विज्ञान के अत्यन्त महत्त्वपूर्ण किन्तु भयानक परिणामों में से एक यह है कि वैज्ञानिक विशेषज्ञों की स्थिति उच्चस्तरीय एवं एकाकी हो गई है। निस्सन्देह यह हर प्रकार के विशेषज्ञों का युग है, शिक्षा की एक वड़ी समस्या हमारे नौजवानों में एक ऐसा रुझान शुरू करना है, जिससे अन्त में विशेषज्ञों का एक ग्रुप इस सिलसिले की वेहतर जानकारी प्राप्त करेगा कि

विशेषज्ञों का दूसरा ग्रुप क्या कर रहा है। लेकिन मैं आज सामान्य शिक्षा के इस विषय की व्याख्या करने में अधिक समय नहीं लगा सकता।

यह धारणा गलत है कि वैज्ञानिक भाव-शून्य, पक्षपात-रहित निर्लेप व्यक्ति है। विश्वास का उन्माद और रचयिता बनने का गर्व एक वैज्ञानिक के हृदय में भी उतना ही तीव्र होता है जितना कि किसी और रचना-कार्य करने वाले व्यक्ति में। लेकिन अपने दृष्टिकोण के प्रति यह भावुकतापूर्ण लगाव विज्ञान में विशेष रूप से अधिक होता है, क्योंकि प्रस्ताव करने वाले के लिए अपने विचारों को प्राविधिक भाषा से ढाँप लेना बहुत ही आसान होता है। इसलिए विशेषज्ञों की त्रुटियों को, जब उनकी राय फैसले लेने में महत्त्वपूर्ण हो, संतुलित करने के तरीके मालूम करना अत्यावश्यक है।

सबसे पहले एक विशेषज्ञ और वह भी बहुत ही जोशीले विशेषज्ञ की बातें सुनते समय एक स्वस्थ शंका-भाव बनाये रखना जरूरी है। दूसरे एक उतनी ही प्राविधिक योग्यता लेकिन विपरीत भावावेष रखने वाला दूसरा व्यक्ति ढूँढा जाये। अगर ऐसा व्यक्ति न मिल सके तो किसी भी ऐसे योग्य आदमी से जिसका विवादग्रस्त प्रस्ताव से कभी कोई सम्बन्ध न रहा हो अपनी ओर से बहस करने के लिए कहा जाये। उससे कहा जाये कि जो प्रस्ताव रखा गया है वह उसका सतर्क विरोध करे। इस ढंग से विशेषज्ञों की और विशेषकर आविष्कारकर्त्ता बने हुए वैज्ञानिकों की त्रुटियाँ संतुलित हो सकती हैं। लेकिन हमारे राष्ट्र के सफल उद्योगों में अभी तक उन पर बिना किसी योजना के अमल किया गया है। दूसरे क्षेत्रों में ऐसे तरीके सोचे ही नहीं गये, अमरीकन सरकार में इनका सर्वथा अभाव है। लेकिन इसमें उनकी खास जरूरत है, क्योंकि मैंने अपने पहले भाषण में बताया था कि सरकार बड़े पैमाने पर अनुसंधान और उन्नति का काम कर रही है। यह अनिवार्य है कि किसी प्राविधिक कार्य में रूढ़िवाद हमारा मार्ग रोक ले। ऐसा करने में भावनाएँ उत्तेजित कर दी जाती हैं और व्यक्तिगत हित प्राविधिक मामलों को उलझा देता है।

सन् १९४० में हम में से, जो शहरी की हैसियत से वाशिंगटन में थे, वे

फौजियों के प्राविधिक रूढ़िवाद के बारे में चिंतित थे। इसे सिद्ध करने के लिए मैं कोई कहानी नहीं दुहराऊँगा। प्रोफेसरों और फौजियों का झगड़ा जानी-बूझी बात है। उसकी जितनी अधिक व्याख्याएँ होती हैं फौजियों के साथ उतना ही अधिक अन्याय होता है और प्रोफेसरों का पल्ला भारी हो जाता है। कुछ भी हो, सन् १९४० के प्राविधिक रूढ़िवाद से मुझे कोई प्रयोजन नहीं, सन् १९५० में उनके उत्तराधिकारी ढूंढने के सिलसिले में जो अंधा जोश पाया जाता है मैं उसकी बात कर रहा हूँ। यह वातावरण पुराने ढंग के शुद्ध धार्मिक वातावरण से भिन्न नहीं है। अन्वेषण-कार्य में सैनिक विभाग उस मनुष्य के समान है जो अपने घोड़े पर चढ़ बैठा और तमाम दिशाओं में पागल की भाँति घूमने लगा।

जिसे लोग बुरी स्थिति समझते हैं उसका कोई इलाज तजवीज करने के लिए न तो यह उचित समय है और न उचित स्थान। मैं सिर्फ इतना कहकर संतुष्ट हो जाऊँगा कि अगर सैनिक विभाग धीरे-धीरे आलोचना की कोई अदालत या व्यवस्था स्थापित करे जिससे नई योजनाओं का जबर्दस्त विरोध होता रहे तो मैं समझता हूँ कि टैक्स देने वालों के रुपये का अधिक बुद्धिमत्ता से उपयोग होगा। जब कोई सवाल फैसले के लिए आता है तो चाहे तीन-चार ऊँचे पदाधिकारी ही सुन रहे हों, एक-दो रेफरी अथवा जज उसके पक्ष और विरोध में दलीलें दे सकते हैं। कहने का आशय यह है कि हर एक प्रस्ताव के विरुद्ध जोरदार और साफ-साफ दलीलें होनी चाहिएँ। एक प्राविधिक विशेषज्ञ टैक्स देने वालों की ओर से हर-एक बड़ी योजना का विरोध करे। तब दोनों ओर की दलीलों का संक्षिप्त विवरण तैयार किया जाए (समझौता समिति की रिपोर्ट नहीं)। विरोधी विचारों से, दलीलों से और आपस की वाद-विवाद से समस्या के बहुत से रुख सामने आ जायँगे और गवाहों के बहुत से पक्षपात प्रकट हो जायँगे। सतर्क विरोध का बड़ा महत्त्व है।

कुछ लोग ऐसे भी होंगे जो विज्ञान के प्रति मेरे इस रुख को पलायन-वाद कहेंगे, लेकिन वे यह नहीं बतायेंगे कि वैज्ञानिक भावी क्रिया के लिए जो मश्विरा दे रहे हैं, उसमें उनकी जो भावुक प्रतिक्रियाएँ शामिल हैं उन्हें कैसे संतुलित किया जाय। मैं चाहता हूँ कि लोग वैज्ञानिक के

तौर पर काम करें लेकिन अपनी भावुकता और पक्षपात को छोड़ दें। उदाहरण के लिए इस सवाल का, कि 'क्या विज्ञान हमें बचा सकता है ?' हाँ में उत्तर देते हुए एक वैज्ञानिक ने लिखा है—"वैज्ञानिक तरीके के तौर पर मानव व्यवहार एक रूप है। तरीका यह है कि जब कोई आदमी शांत मन से और बिना किसी पूर्वाग्रह के निरीक्षण शुरू करता है तो वह अपने आपसे कुछ सवाल पूछता है। फिर वह अपने निरीक्षणों को जितना ठीक-ठीक सम्भव हो सके दूसरों के सामने प्रस्तुत करता है और इस ढंग से प्रस्तुत करता है कि उसने शुरू में अपने आप से जो सवाल पूछे थे जैसे अब उनका जवाब दे रहा हो। इसका परिणाम यह होता है कि पहले जो विश्वास और मान्यताएँ थीं और उनका इन निरीक्षणों और इन उत्तरों के प्रकाश में सुधार और संशोधन हो जाता है।" ये अक्सर दोहराई हुई वही पुरानी बातें हैं जिन्हें वैज्ञानिक आचरण का नाम दिया जाता है। लेकिन मैं यह कहने की जुर्रत करूँगा कि प्राकृतिक विज्ञानों ने जिस ढंग से उन्नति की है यह उसका सही वृतान्त नहीं है। ये वे बहुत सी सीमित बातें हैं जिनका इस्तेमाल दैनिक जीवन में होता रहता है।

इस बात को स्पष्ट करने के लिए मैंने अपने पहले भाषण में आधुनिक विज्ञान की उन्नति के बारे में जो कुछ कहा था, मैं एक क्षण के लिए आपका ध्यान उसकी ओर दिलाना चाहता हूँ। मैंने कहा था कि जिस सरगर्मी को हम वैज्ञानिक अनुसंधान का नाम देते हैं वह प्रयोगवादी क्रियाओं से बनी हुई है जिनके द्वारा मनुष्य ने सभ्यता के प्रादुर्भाव से लेकर अब तक अपनी व्यावहारिक कलाओं, सामान्य काल्पनिक विचारों और गणित सम्बन्धी ज्ञान अथवा तर्क-वितर्क को उन्नत किया है। जब मनुष्यों ने यह समझ लिया कि इन तीनों सरगर्मियों को आपस में कैसे जोड़ा जा सकता है तब विज्ञान की उन्नति सोलहवीं और सत्रहवीं सदी में बड़ी तेजी से होने लगी। जब काम में लाये गये तो काल्पनिक विचारों ने भावी खोज के लिए बहुत बड़े पैमाने पर आधार का काम दिया और ऐसी मान्यता जसे "धरती हवा के समुद्र से घिरी हुई है" तजुरबा से तभी परखी जा सकती था

जब उसका सम्बन्ध व्यवहार में आई हुई बहुत सी सीमित बातों से जोड़ा जाय। लोग इस प्रकार की बातें भी करते हैं कि "अगर मैं यह टूँटी घुमा दूँ, तो यह और वह हो जायगा।" सिर्फ लम्बे तर्क-वितर्क के बाद ही "अगर, तो" की बात पैदा हुई, जिसे परखा जा सकता था और जिसका व्यावहारिक जीवन से सम्बन्ध जोड़ा जा सकता था।

इस बात की व्याख्या करने के लिए कि मान्यताओं और परिमित व्यवहारों का वह आपसी सम्बन्ध क्या है जो विज्ञान की उन्नति के लिए आवश्यक है, मैं सहज-बुद्धि का एक बहुत ही मामूली उदाहरण दूँगा। फर्ज कीजिए आपके सामने एक बन्द दरवाजा है और एक चाबियों का गुच्छा है तो आपके जेहन में तुरन्त यह बात आयेगी कि इनमें किसी एक चाबी से ताला खुल जायेगा। यही बात काम का आधार है। इससे आदमी कई धारणायें बना सकता है जिन्हें उचित क्रिया से परखा जा सकता है। सब से स्पष्ट बात यह है कि हर एक चाबी को बारी-बारी से लगाकर यह देखा जाये कि क्या किसी एक चाबी से ताला सचमुच खुल जाता है। इस बात को लेकर अब तजुरुबे शुरू होंगे और उनमें एक प्रकार की व्यवस्था होगी, क्योंकि इस बात का ध्यान रखना पड़ेगा कि हर एक चाबी को वाकई परखा जा सके और जो चाबियाँ परखी जा चुकी हैं, उन्हें दूसरी चाबियों से अलग रक्खा जा सके। काम शुरू करने के लिए इस प्रकार की धारणायें उत्पन्न होंगी। (१) इस गुच्छे में से एक चाबी ताले को खोल देगी (२) यह चाबी ताले को खोल देगी (३) अगर यह चाबी खोल देगी तो जब मैं इसे ताले में डाल कर घुमाऊँगा तो वह खट से खुल जायेगा। जब इस "अगर, तो" की परख की जाती है तो हाँ या ना में उसका परिणाम निकलता है। इसके बाद दूसरी चाबी की परख होती है। विज्ञान के अनुभवों में ठीक एसे ही "अगर, तो" की परिमित धारणायें इस्तेमाल की गई।

अपनी बात को कुछ अधिक स्पष्ट करने के लिए विज्ञान के इतिहास से मैं एक सीधा-सादा उदाहरण देता हूँ। पास्कल ने सत्रहवीं सदी में इस बात की परख शुरू की कि धरती हवा से घिरी हुई है, जो दबाव डालती है। बैरोमीटर में पारे की ऊँचाई को उसने अपनी इस परख का साधन

वनाया। इस मतलव के लिए उसका वहनोई (अथवा साला) पुआयें दे डोमे पर चढ़ गया और उसकी चोटी पर वैरोमीटर में पारे की ऊँचाई को मापा। इस तजुरुवे ने पास्कल के इम दृष्टिकोण को सच्चा सिद्ध कर दिया कि पहाड़ के दामन में पारे की जो ऊँचाई है चोटी पर यह ऊँचाई उसकी अपेक्षा वहुत कम होगी। इस धारणा की कि दुनिया हवा के समुद्र से घिरी हुई है, सीधे तौर पर परख सम्भव नहीं। जिस परिमित धारणा की परख की गई वह यह थी कि "अगर मैं वैरोमीटर को यहाँ चोटी पर लगाऊँ और पारे की ऊँचाई को मापूँ, तो यह ऊँचाई उस ऊँचाई से कम होगी जो पहाड़ पहाड़ के नीचे थी।" इस परिमित धारणा में और व्यापक धारणा में (धरती हवा के समुद्र से घिरी हुई है) जो सम्वन्ध हैं उसके आधार पर वहुत से तरीके और वहुत सी वातें सोची जा सकती हैं।

विज्ञान में तर्क-वितर्क का जो क्रम चलता है उसको व्यक्त करने के लिए मैं वही मामूली उदाहरण फिर लेता हूँ जो मैं पहले दे चुका हूँ। यहाँ एक परिमित धारणा, एक वड़ी तो भी सीमित धारणा अर्थात् "इनमें से एक चावी दरवाजे को खोल सकती है।" इसमें भी हाथ घुमाने और ताले को देखने में जो निरीक्षण करना पड़ता है उसमें भी तर्क-वितर्क का एक सिलसिला शुरू होता है और सहज-बुद्धि के कितने ही विचार और धारणायें उत्पन्न होती हैं। अगर उनमें से कुछेक को गिनवाया जाये तो यह कहना जरूरी हो जाता है कि वहुत सी सभ्यताओं में 'चावी', 'ताला', 'घुमाना' और 'ताले का खट से खुलना' शब्द निरर्थक होंगे। लेकिन सहजवुद्धि की कुछ मान्यतायें जैसे चावी ताले को खोल देती है, अधिक महत्त्वपूर्ण हैं, जो जाँच के सारे समय में नहीं वदलेगी और और यह कि हर एक चावी 'वही चावी है और ताला भी वही' है। विज्ञान के प्रयोगों में जो मान्यतायें और विचार हैं उन्हें किसी भी तरह तुच्छ नहीं कहा जा सकता। इन मान्यताओं को आलोचक-वुद्धि से न देखने के कारण ही वहुत सी गलतियाँ उत्पन्न हुई हैं। अथवा अक्सर 'गलतियाँ' जैसा कि अव हम उन्हें कहते हैं, इस तथ्य से उत्पन्न हुई कि काम चलाने के लिए जो मान्यतायें वनानी पड़ीं, वे सिर्फ शुरू के अनुमान सिद्ध हुईं।

भौतिक विज्ञान में इस्तेमाल होने वाले तरीकों के विश्लेषण पर

आज जो ध्यान दिया जा रहा है उसकी दृष्टि से अन्तिम बात महत्त्वपूर्ण है। इस बात की बड़ी जरूरत महसूस की जा रही है कि 'लम्बाई' और 'समकालीनता' जैसे जो विचार भौतिक विज्ञान के तजुरुबों में जिस प्रकार इस्तेमाल किये जायें, उसी प्रकार उनकी व्याख्या कर दी जाये। कुछ वैज्ञानिकों का खयाल है कि चूंकि अतीत में ऐसा नहीं किया गया, इसलिए भौतिक विज्ञान की उन्नति में देर लगी। यह सम्भव हो सकता है। लेकिन अगर रसायन और जीव-विद्या के इतिहास को देखा जाये तो यह बात स्पष्ट हो जाती है कि विज्ञान के बचपन में स्पष्ट और सीधी प्रतिभाषायें प्रस्तुत करना सम्भव नहीं था। बल्कि शुरू के अन्वेषण करने वालों ने सहज-बुद्धि के विचारों से काम लिया जिनका धुँधला और अनिश्चित होना अनिवार्य था। इन्हीं अस्पष्ट विचारों पर काम करने के लिए तैयार होकर और परिमित धारणाओं, अनुभवों और निरीक्षणों से उनका सम्बन्ध जोड़कर आरम्भिक वैज्ञानिकों ने सफलता प्राप्त की।

उदाहरण के लिए पास्टेर का खमीर का अध्ययन लीजिये। 'खमीर' प्रत्येक दिन की कुछ क्रियाओं को बयान करने के लिए इस्तेमाल किया जाता था और लोगों ने अपने सदियों के अनुभव से इन क्रियाओं पर काबू पाना ही सीख लिया था। पास्टेर के समय में उफान की कोई स्पष्ट प्रतिभाषा नहीं थी और वह अब भी नहीं है। खाँड से अलकोहल बन जाना भी ऐसी ही क्रिया है, जो कीटाणुओं के कारण अमल में आती है। दूसरी तब्दीली स्टार्च से खाँड बनाने की है, जो जई की कोंपलों में से गर्म पानी द्वारा निकाली जाती है। पास्टेर ने बड़े पैमाने पर यह धारणा प्रस्तुत की कि तमाम खमीर जीवित कीटाणुओं के कारण उठता है। स्टार्च से खाँड बनने को अपवाद ठहराने के लिए जहाँ कोई कीटाणु उपस्थित नहीं होता उसने अपने बयान, जिसे हम वाकई खमीर कहते हैं, का वाक्य जोड़ दिया। तब उसके लिए यह दिखाना सहज हो गया कि खमीर की जितनी क्रियायें हैं, उन सब में कीटाणु उत्पन्न होते हैं।

पास्टेर के तर्क का ढंग कोल्हू के बैल की तरह दायरे में घूमने के बराबर है। यह बात आज जबकि हम जानते हैं कि उसके "वाकई

खमीर" और इस प्रकार की दूसरी तब्दीलियाँ जिनमें कीटाणु उपस्थित नहीं होते इंजाईम के कारण होती हैं। फिर भी पास्टेर का तर्क का यह ढंग निश्चय ही उपयोगी सिद्ध हुआ। यह बिल्कुल गैर मति की बात थी कि उसने ऐसे उदाहरणों को जिनमें कीटाणु उपस्थित नहीं होते, उन्हें अपवाद मानकर बड़े गर्व से कह दिया कि खमीर कीटाणुओं से उत्पन्न होता है। लेकिन उसकी यह धारणा नीति के तौर पर, गाइड के तौर पर सफल रही। अगर पास्टेर अपनी मंतिक में अधिक कट्टर और कठोर होता तो उसके परिणाम इतने क्रान्तिकारी न होते।

अगर मैं गलती नहीं कर रहा तो जीव-विद्या में, रसायन में सबसे अधिक औषधि में अस्पष्ट विचारों का सफलतापूर्वक प्रयोग विशेषकर उन लोगों के लिए महत्त्वपूर्ण है जिनका विषय मानव-चरित्र है। जान टिंडल ने पास्टेर की खोजों को कलाल की कला पर लागू करते हुए "बीयर तैयार करने के सम्बन्ध में जो वैज्ञानिक विवरण हैं" उनकी तुलना कलाल के प्रयोग-ज्ञान से की। बड़े पैमाने पर पास्टेर की धारणा (खमीर और कीटाणुओं का आपसी सम्बन्ध है) शराब निकालने के उद्योग में प्रयोग-ज्ञान की मात्रा को कम करने के सिलसिले में पहला कदम थी। लेकिन हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि लोगों ने अपने सदियों के प्रयोग-ज्ञान के कारण बीयर और शराब के उद्योग को काफी तरक्की दी थी। क्या इस प्रकार बहुत सा प्रयोग-ज्ञान संचित नहीं होता रहा। "खमीर" के बजाये "टाइफाइड ज्वर" अथवा "उपदेश" अथवा "नमूनिया" के शब्द रखिये तो आपको मालूम होगा कि इनमें भी प्रयोग-ज्ञान की मात्रा इसी मार्ग से चलकर कम हुई है। आपको बुनियादी विचार (बीमारी वास्तव में क्या है ?) की व्याख्या करने में वही कठिनाई होगी, लेकिन आप देखेंगे कि समस्याओं को हल करने में सदियों के विशुद्ध प्रयोग-ज्ञान को बहुत कम सफलता प्राप्त हुई। चूँकि इन अनुभवों में शराब या बीयर के कनस्टर खराब नहीं हुए, मानव-जीवन नष्ट हुए हैं; इसलिए औषधि-विज्ञान के इतिहास में विशुद्ध प्रयोग-ज्ञान की गलतियाँ बड़ी दिखाई देती हैं। हम शुरू के कलालों की गलतियों पर हँस सकते हैं, लेकिन "फसद" खोलने से अनावश्यक मृत्युओं की बात कहते हुए हम काँप जाते हैं।

इलाज के यह तरीके अब छोड़ दिये गये हैं। विशुद्ध प्रयोग-ज्ञान के अभ्यास और गलतियों के तरीके उस वक्त भी धीमे और हानिकारक हैं, जब वे सुव्यवस्थित भी हों। उनके द्वारा कलाओं की उन्नति हुई है, लेकिन औषधि कला ने उन्नति के इस अरसे में ऐसे बहुत से लोगों की जो हकीमों से मश्विरा ले सकते थे, जिन्दगियों को कम किया है। दर-असल यह सिर्फ इसी सदी में सम्भव हो सका है कि डाक्टरों और सर्जनों ने जितने लोगों को हानि पहुँचाई है, उनसे अधिक की वे सहायता कर सके, दूसरे शब्दों में जितने लोगों की उन्होंने हत्या की है उनसे अधिक को अच्छा कर सके हैं।

मेरे ख्याल में सामाजिक विज्ञानों का तुलनात्मक अध्ययन बेहतर होगा। अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र और मनोविज्ञान आदि मानव-जाति से सम्बन्ध रखने वाले जितने भी विज्ञान हैं, अपने-अपने क्षेत्र में प्रयोग की मात्रा को कम करने का यत्न करते रहे हैं। किसी हद तक वे प्रयोग के तरीकों को संगठित और व्यवस्थित करने के यत्न हैं। प्रत्येक विज्ञान में एक पास्टेयर पैदा हो चुका है, उसकी देन नई व्यापक धारणायें हैं, जिनके आधार पर आगे बड़े पैमाने पर उपयोगी काम हो सकता है। अगर सम्भव हो सके तो इन व्यापक धारणाओं के आधार पर जो उन्नति हुई है और प्रयोग द्वारा जो उन्नति हुई है, इन दोनों को अलग-अलग समझ लेना अत्यावश्यक है। इसे समझने के लिए हाल ही के सालों में काफी श्रम किया गया है।

मेरा ख्याल है कि समाजशास्त्रियों का इस बात से कुछ अधिक मत-विरोध नहीं होगा कि उनके अन्वेषण का पूरा क्षेत्र उस स्थिति में है जिसमें डेढ़ सौ साल पहले जीव-विद्या विज्ञान और औषधि-विज्ञान थे। अगर यह सच है तो निश्चय ही इस सदी में वह बड़े-बड़े डग भरेगी, लेकिन विज्ञान के स्वभाव ही से (प्रयोग ज्ञान के मुकाबले में) यह भविष्यवाणी करना कठिन है कि वह यह पग किस दिशा में भरेगी। चेतना, प्रेम और शक्ति का मोह आदि सहज-बुद्धि के अस्पष्ट विचारों में से कोई असाधारण विद्वान कौनसा ले, जिसे वह व्यापक और उपयोगी वैज्ञानिक कार्य का आधार बना सके। शायद आप में से कुछ लोग

आपत्ति उठाएँ कि मैं व्यर्थ में सशंक हो रहा हूँ, क्योंकि इस सिलसिले में पहले ही काफी काम हो चुका है। एक दिशा में पावलोव ने मानव-चरित्र के बारे में नये मार्ग खोज दिये हैं और दूसरी दिशा में फ्रायड को उतनी ही सफलता प्राप्त हुई है जितनी पास्टेयर को हुई है।

सामाजिक विज्ञान की विज्ञान के रूप में उन्नति को समझने के लिए हमें उसी कठिनाई का सामना करना पड़ता है, जिसका औषधि में विशुद्ध प्रयोग-ज्ञान को विज्ञान से अलग करना कठिन है, तत्कालीन परिणामों के बारे में तटस्थ रहना कठिन है और वास्तविक सफलता और असफलता का पता लगाना भी सहज नहीं है। जो लोग समाज-शास्त्रियों, चिकित्सकों और मनोवैज्ञानिकों के व्यवहार को कम करके देखते हैं, मैं उनका ध्यान इंगलैंड के डा० थामस नीडोस के दिलचस्प मामले की ओर दिलाना चाहता हूँ। वह उन्नीसवीं सदी का एक प्रसिद्ध चिकित्सक था और विज्ञान की उन्नति से भी आगे जाता था। उसने एक हस्पताल खोला, जिसमें रोगियों का उन गैसों द्वारा इलाज किया जाता था, जो हाल ही में मालूम की गई थीं। जेम्स वाट ने रोगियों को गैस देने के लिए एक सफल मशीन तैयार की और एक प्रतिभाशाली नौजवान हम्फ्रे डेवी ने रसायन शास्त्री के तौर पर अपने जीवन का आरम्भ किया। सौभाग्य की बात है कि कोई नहीं मरा, यह भी ठीक है कि कोई अच्छा नहीं हुआ; लेकिन डाक्टर बेडोस अनाड़ी अथवा जालसाज़ नहीं था, अधिक-से-अधिक कोई यह कह सकता है कि वह अपने समय से डेढ़ सौ साल आगे था और उसने गलत तरीकों का इस्तेमाल किया।

डाक्टर बेडोस की संस्था द्वारा न औषधि और न औषधि-विज्ञान की कोई उन्नति हुई। लेकिन उसने जिस इरादे से काम शुरू किया था दूसरे डाक्टर भी उसी नेक इरादे से काम करते रहे, पहले धीरे-धीरे और फिर बीसवीं सदी में औषधि-विज्ञान की विज्ञान के तौर पर आश्चर्यजनक उन्नति हुई। इस उन्नति की जाँच करते हुए हम डा० बेडोस जैसे लोगों की ईमानदार गलतियों और उन धूर्त लोगों की गिनती नहीं करेंगे जो उनके बाद इस क्षेत्र में आये। इसलिए मेरा ख्याल है कि सामाजिक विज्ञान के पूरे क्षेत्र में शायद आज से सौ

साल बाद इतिहासकार विज्ञान को प्रयोगवाद से और १६५० की धूर्तता से अलग करने में सफल हो जायेंगे। हम आरम्भिक समय में हैं इसलिए हम खुद यह काम नहीं कर सकते। लेकिन जो लोग सामाजिक विज्ञान में उन्नति की माँग करते हैं और जिनका विश्वास है कि यह संगठित आक्रमण और जोश दिलाने ही से हो सकती है, उन्हें उन्नीसवीं सदी का औषधि का इतिहास पढ़ने से अवश्य लाभ हो सकता है।

इतिहास अगर हमें कोई सीख देता है तो वह अवश्य यह है कि अगर विज्ञान की उन्नति को प्रयोग के तरीकों से अलग नहीं किया जा सकता, तो वह अनायास ही किसी और से हो जाती है। प्रयोग-ज्ञान की मात्रा कम करने में सफलता सहसा किस ओर से आयेगी, यह कोई नहीं जानता। जब डाक्टर बेडोस रसायन द्वारा रोगों पर सीधे हमले कर रहा था, उसके थोड़ी ही देर बाद एक फ्रेंच भौतिक वैज्ञानिक बेरन चार्ल्स डे टोर ने सिद्ध किया कि खमीर की गोलियाँ जो बीयर बनाने के लिए जरूरी हैं, तमाम वनस्पति का संगठित अंग हैं। यह किस को ख्याल था कि अंग्रेज डाक्टर नहीं बल्कि एक फ्रेंच भौतिक वैज्ञानिक उस मार्ग से जा रहा है, जिस पर चलकर संक्रामक रोगों पर नियंत्रण करना सम्भव हो जायेगा ? विज्ञान में निशाने आम तौर पर टेढ़ी गेंद से लगाये जाते हैं।

जो लोग सामाजिक विज्ञानों की उन्नति में सहायता करना चाहते हैं, मैंने जो कुछ कहा, उनके लिए इसका मतलब स्पष्ट है। एक ऐसे निष्पक्ष अन्वेषणकर्त्ता का जो विचार रखता है, समर्थन करो, यद्यपि उसके विचार व्यावहारिक समस्याओं की दृष्टि से व्यर्थ जान पड़ें। व्यावहारिक कलायें, जिनमें मानव-सम्बन्धों क कला भी शामिल है, अभ्यास और गलतियों के आधार पर उन्नति करना, चाहे वह उन्नति धीरे-धीरे ही क्यों न हो, अनिवार्य है, और समाज हमेशा उन्नति के कामों में सहायक होता है। सफलताओं पर नाक-भौं नहीं चढ़ाई जा सकती, चाहे वे प्रायोगिक ही क्यों न हों, क्योंकि मैंने अपने पहले भाषण में बताया था कि कुछ विज्ञान में प्रयोग-ज्ञान काफी मात्रा में मिला हुआ

है, यही स्थिति सामाजिक विज्ञानों में भी है। इस सदी में हमने अपने अभ्यास और गलती के तरीकों को सुधार लिया है और हम प्रायोगिक तरीकों के बारे में काफी समझदार हो गये हैं। जहाँ तक प्राकृतिक विज्ञानों का सम्बन्ध है, उद्योग से यह बात निर्विवाद सिद्ध हो जाती है। शिक्षा के क्षेत्र में, अब नार्मल मनोवृत्ति के व्यक्तियों से निपटने में अर्थ शास्त्र के कुछ परिमित क्षेत्रों में, शायद कुछ मानव-सम्बन्धों में जो सफलता प्राप्त हुई है, उसे दृष्टि में रखा जाये तो प्रगति का बोध होता है। और यह सिद्ध होता है कि हम कुछ मानव-समस्याओं को अपने पूर्वजों से बेहतर समझते हैं।

आज डाक्टरों की बड़ी जरूरत महसूस की जा रही है, लेकिन सनकीपन में किसी को यह नहीं सोचना चाहिए कि जब वे लाभ के स्थान पर हानि पहुँचाते थे तब भी बीमार डाक्टरों के पीछे दौड़ते थे। आदमी को बहुत अधिक आशावादी बनकर यह भी नहीं सोचना चाहिए कि अगर सारे पश्चिमी देशों में दवाई देना हुक्म से बन्द कर दिया जाता तो हम संक्रामक रोगों पर काबू पाना कभी न सीखते। समस्याओं को हल करना सीखने के लिए हमने जो उन्नति की है व्यवहार और सिद्धान्त में गलतियाँ करना उसका अविच्छेद अंग है।

अब विज्ञान और मानव-चरित्र के बारे में मैं अंतिम बात कहता हूँ। जीवन में जो कदम भी हम उठाते हैं उसके पीछे बहुत से विचार और धारणाएँ आपस में उलझी होती हैं। अपने लिए हम जो मंजिल भी निश्चित करते हैं, जो भी फैसला करते हैं, चाहे वह तुच्छ हो अथवा महत्त्वपूर्ण, उसके पीछे संसार और मानव-जाति के बारे में धारणाएँ निहित रहती हैं। मैं समझता हूँ कि सहज-बुद्धि के विचारों को वैज्ञानिक विचारों से बिलकुल अलग करने का प्रयत्न करना न सिर्फ असम्भव है, बल्कि अनुचित है। अगर सांसारिक व्यवस्था के पूरे साधनों और दूसरे मनुष्यों के अस्तित्व में विश्वास ही एक व्यक्ति के जीवित रहने के लिए आवश्यक नीति है तो एक भौतिक वैज्ञानिक अथवा रसायन शास्त्री के लिए, जो प्रयोगशाला में काम कर रहा है, काम के बारे में एक नई धारणा नीति के तौर पर तजुरबे में उसका पथ-प्रदर्शन करती है। आदमी, रेखा

कहाँ खींचे ? आधुनिक विज्ञान के प्रादुर्भाव से पहले हमारे पूर्वजों के सहज-बुद्धि के विचार उनके आचरण सम्बन्धी फैसलों की बुनियाद होते थे। अगर वैज्ञानिक विचार अब हमारी सहज-बुद्धि की धारणाओं का अंग बन गए हैं, तब कम-से-कम इसी मात्रा में पहले के वैज्ञानिकों के कामों के नतीजे आज हमारे आचरण सम्बन्धी फैसलों को प्रभावित करते हैं। विज्ञान और मानव-आचरण में यह सम्बन्ध मुझे आवश्यक जान पड़ता है।

इस प्रयोगशाला में प्रत्येक वैज्ञानिक हमेशा के लिए फैसला कर रहा है कि काम का यह तरीका इससे बहतर है। जो भी तजुरुबा करने की वह योजना बनाता है, उसे शुरू ही से इन बातों का ध्यान रखना पड़ता है कि क्या करना ठीक होगा, सफलता कैसे होगी और फिर यह भी कि अन्वेषण करने वाले को मछलियाँ पकड़ने जाने के बजाय अपनी प्रयोगशाला में काम करना चाहिए।

इस पर आप में से कुछ यदि उत्तेजित होकर नहीं तो कम-से-कम अधीर होकर यह कहना चाहेंगे। इस एक घंटे के भाषण में मानव-आचरण के बारे में कुछ भी नहीं कहा गया। आचार-व्यवहार और नीति के बारे में एक शब्द भी नहीं कहा गया और धर्म का नाम भी नहीं लिया गया। इसका उत्तर यह है कि विज्ञान और आचरण का जो सम्बन्ध है और दोनों का मानव फैसलों के अपेक्षाकृत मामूली उदाहरणों से जो सम्बन्ध है, उनका विश्लेषण मनुष्य के स्वभाव और बुराई और अच्छाई के बड़े सवालों पर विचार करने के लिए आवश्यक भूमिका है। जो व्यक्ति जीवन की सार्थकता पर नैतिक मापदंडों और आध्यात्मिक मूल्यों पर विचार करता है आधुनिक विज्ञान उसका कहाँ तक पथ-प्रदर्शन करेगा, यह कुछ बुनियादी दार्शनिक धारणाओं पर निर्भर करता है। इन्हीं धारणाओं से विज्ञान के प्रति उसके रवैये का पता चलेगा।

मैंने अपने पिछले भाषण में बताया था कि वज्ञानिक विचार या तो नीति हो सकता है अथवा सिद्धान्त। अगर सिद्धान्त है तो यह भौतिक संसार के नक्शे (चाहे अनुमान ही से बनाया गया हो) के बराबर है और उसका मनुष्यों के और उनके भाग्य के वर्णन के सदृश्य होना भी आवश्यक है। एक विश्व-व्यापी धारणा जिसमें मनुष्य, जीवन, प्रकृति और शक्ति को

यथोचित स्थान प्राप्त हो दार्शनिकों और अध्यात्मवादियों का ध्येय रही है। अठारहवीं-उन्नीसवीं सदियों में वैज्ञानिक भी इसी ध्येय से काम करने लगे। भौतिक-विज्ञान की क्रांति से पहले यह इससे बहुत सहज काम जान पड़ता था जितना कि वह वास्तव में निकल आया। यह एक दिलचस्प बात है कि सदी के शुरू में जिन्होंने वैज्ञानिक असूल बनाया उनमें आशा-वादी और निराशावादी दोनों शामिल थे। एक ही तरह की स्थापनाओं (अथवा लगभग एक ही तरह की स्थापनाओं) से सर्वथा विभिन्न मनो-स्थितियाँ उत्पन्न होती हैं। आशावादियों के बारे में मैं अपने अगले भाषण में कहूँगा। यह भाषण बर्ट्रेंड रसेल ने अपने एक लेख "फ्री मैन्स वर्शिप" में पचास साल पहले जो लिखा उसका एक उद्धरण देकर समाप्त करता हूँ। "हमारे विश्वास के लिए विज्ञान जो दुनिया प्रस्तुत करता है।" उसकी बात करते हुए उसने लिखा—"मनुष्य उन कारणों की पैदावार है जो बिना किसी पूर्व विचार के उसके कार्यों से उत्पन्न हो गए। इस का मतलब है कि उसका उद्‌भव, उसका विकास, उसकी आशाएँ और आशंकाएँ, उसके प्यार और उसके विश्वास परमाणुओं के अकस्मात् इकट्ठा हो जाने का नतीजा है।" और यह कि न आग, न धीरता और न विचार और भावनाओं की तीव्रता किसी व्यक्ति विशेष को कब्र से आगे बचा सकती है, और यह कि सदियों का सारा श्रम, सारी भक्ति, सारा चिंतन और मानव-प्रतिभा की सारी चमक-दमक अनिवार्य रूप से इस सूर्य-मंडल की मौत का शिकार होगी और यह कि मानव सबलता का मन्दिर खंडहर रूसी संसार के मलबे-तले दबकर रहेगा। ये सब बातें अगर निर्विवाद नहीं हैं, तो भी यह सच है कि अगर कोई फिलॉस्फर उन्हें अस्वीकृत करता है, वह फिलॉस्फर नहीं माना जायगा। इन सचाइयों के मचान में, सिर्फ हठी निराशा की बुनियाद पर, आत्मा का भवन सहज में बनाया जा सकता है।

यह उद्धरण इसलिए दिया गया है कि मुझे संदेह है कि प्रसिद्ध दार्शनिक आज भी यही विचार इसी भाषा में व्यक्त करेगा। लेकिन विज्ञान को एक उसूल अथवा उसूल की दुनिया के नक्शे का चाहे वह कितना ही अपूर्ण क्यों न हो एक अंग मानने में जो कठिनाई है, इस उद्धरण से उसकी व्याख्या हो जाती है। आधुनिक विश्व अनुभवों के उन परिणामों

पर निर्धारित है, जिसकी पचास साल पहले कल्पना भी नहीं की जा सकती थी और जिन व्याख्याओं पर उसका आधार है वे सन् १६०३ की रसेल की व्याख्या से विभिन्न हैं। इन व्याख्याओं में से कोई नेकी और बदी के सवाल पर असर डालती है या नहीं इस बात को मैं अपने अंतिम भाषण में लूँगा।

विज्ञान और आध्यात्मिक मूल्य

विज्ञान और मानव-चरित्र के बारे में जो भ्रान्ति है, अपने पिछले भाषण में मैंने उसे दूर करने का प्रयत्न किया। इस भाषण में इसी विषय को जारी रखते हुए मैं यह दिखाने का प्रयत्न करूँगा कि एक विशेष प्रकार के आचरण पर जिसका सम्बन्ध ऐसे नैतिक निर्णय से है जिस पर विभिन्न सांस्कृतिक ग्रुप सहमत हैं, विज्ञान का क्या प्रभाव पड़ता है। इतिहास में जो भी नया मत लेकर आया उसने यह जरूर कहा कि मनुष्य को दूसरों का शारीरिक दुख दूर करना चाहिए। ईसाई मत में इन प्रयत्नों को विशेष महत्त्व प्राप्त है, उनकी यहाँ तक प्रशंसा की गई है कि ऐसे उदाहरणों को आदर्श आचरण बताया गया है। जहाँ तक कि अगर न्यूयार्क शहर में से किन्हीं सौ आदमियों से पूछा जाये तो उनमें से कम-से-कम नव्वे यह कहेंगे कि रोगियों और दुखियों की सहायता करना "अच्छा" है और उदासीनता और निष्ठुरता "बुरी" है। इसके अलावा अधिकांश व्यक्ति अपने कृत्य से इस नैतिक फैसले का पालन करेंगे। जिन दलीलों के आधार पर यह फैसला किया जायेगा उनका क्षेत्र काफी विस्तृत हो सकता है। लेकिन चाहे उन्हें धर्म की नपी-तुली भाषा में व्यक्त किया जाये अथवा दर्शन के उदार विचारों में, अन्त में वे उसी क्षेत्र में आ जायेंगी जिन्हें मैं "आध्यात्मिक मूल्यों का क्षेत्र कहूँगा।" किसी भी ढंग से कहा जाये यह मानी हुई बात है कि एक निःस्वार्थ कार्य अच्छा कार्य है। कार्य करने वाले व्यक्ति के लिए उसके सामाजिक परिणाम कुछ भी हों; लेकिन किसी रोगी दुखिया की सहायता करना ऐसा काम है जिसे प्रत्येक मनुष्य को करना चाहिए।

हमारे इस विश्वास का आधार चाहे, कुछ भी हो, "रोगी की सहायता करो" का विचार तभी हमारे आचारण का आदर्श बन सकता

जब हम वाकई सहायता करने में समर्थ हैं। यह बताने की जरूरत नहीं कि औषधि-विज्ञान की उन्नति के कारण ही मानव-जाति के कुछ रोगों का इलाज इस हद तक सम्भव हो सका है, जिसकी दो-तीन सदी पहले कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। औषधि और सार्वजनिक स्वास्थ्य की वर्तमान स्थिति हजारों वैज्ञानिकों के पिछले तीन सौ साल के प्रयत्नों का नतीजा है। निस्संदेह इस क्षेत्र में जिन लोगों ने काम किया, उनमें से अधिकांश को दुखी मानवता से कोई सरोकार नहीं था। दरअसल कुछ तो इस बात से सर्वथा अनभिज्ञ थे कि उनका काम चिकित्सकों की समस्याओं को हल करेगा। दूसरी ओर पिछले सौ साल में बहुत से अन्वेषकों ने इसी भावना से काम किया कि प्राचीन चिकित्सा-कला को उन्नत किया जाये, इनमें न सिर्फ चिकित्सक बल्कि रसायनशास्त्री और जीव-विद्या शास्त्री भी शामिल थे।

बहुत से अन्वेषणकर्त्ताओं के इस सचेत प्रयत्न के कि रोगों पर काबू पाया जाये, जीवन को लम्बा किया जाये और दुःख को कम किया जाये नाटकीय ढंग के परिणाम निकले हैं। यहाँ मैं यह बता देना पसन्द करूँगा कि औषधि-विज्ञान और चिकित्सा-कला की उन्नति के कार्य में जिन लोगों ने भी भाग लिया उनमें से हर एक के आचरण का निर्णय कुछ आध्यात्मिक मूल्यों के आधार पर होगा। उन मूल्यों का "मनुष्य को दुखिया की सहायता करनी चाहिए" से घनिष्ठ सम्बन्ध है। हम जानते हैं कि एक डाक्टर का आचरण कुछ नैतिक आदर्शों से निर्धारित होता है। और इन आदर्शों का आधार भी आध्यात्मिक मूल्यों पर है। मैं जिस बात पर जोर देना चाहता हूँ वह यह है कि जो लोग वैज्ञानिक खोज में लगे हैं अथवा प्रयोगवादी ढंग से किसी कला को उन्नत करने में व्यस्त हैं उनके कार्य में आध्यात्मिक मूल्यों का कितना दखल है। मैं फिर यह बताना चाहता हूँ कि जो लोग यह कहते हैं कि विज्ञान और नैतिकता अलग-अलग क्षेत्र हैं, वे वैज्ञानिक कार्य के स्वभाव और बहुत से वैज्ञानिकों के उद्देश्य को समझने में असफल रहे हैं।

इस समय परमाणु-बम, जहरीला गैस और कीटाणु युद्ध के सम्बन्ध में हुई प्राविधिक सफलताओं के बारे में जिस मात्रा में लिखा जा रहा है

उसे ध्यान में रखते हुए हम एक क्षण के लिए भी यह सोचें कि आधुनिक-विज्ञान के यंत्रों द्वारा स्त्री और पुरुषों की एक पूरी फौज दुखियों की सहायता में व्यस्त है। यह सुख और आराम की मात्रा बढ़ाने, जीवन का मापदंड ऊँचा करने और मन और शरीर के आनन्द में वृद्धि करने से सर्वथा अलग बात है। हमारी आधुनिक औद्योगिक सभ्यता ग्राहकों के लिए जो कुछ उत्पादन करती है उसमें से अधिकांश को भौतिकवादी कहा जा सकता है और ईसाई धर्म के आदर्शों को मानने वाले कुछ लोग उसे शैतान का आविष्कार भी कहेंगे। लेकिन नैतिक सिद्धान्तों का समर्थन करना सर्वथा दूसरी बात है। विज्ञान के इस पहलू को समझने की जरूरत है। अगर अपने पड़ोसी को अपनी ही तरह से प्रेम करना धार्मिक दृष्टिकोण का सार है तो यह नीति के रूप में तभी सार्थक हो सकता है कि पड़ोसी जब दुख या मुसीबत में हो तो आदमी वाकई उसकी सहायता करने में समर्थ हो।

जहाँ तक शारीरिक दुख दूर करने का सवाल है इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि विज्ञान इसमें बहुत सफल है। आज से सौ साल बाद मानसिक दुखों के बारे में भी यह स्थिति होगी, यह कोई नहीं कह सकता अलबत्ता यह आशा की जाती है कि जो लोग मानव-स्वभाव का अध्ययन कर रहे हैं, उनके प्रयत्न अवश्य सफल होंगे। यहाँ फिर नैतिक निर्णय काम करता दिखाई देता है।

जैसा कि मैंने अपने पहले भाषण में कहा था कि यह विचार कि व्यावहारिक कलाओं की उन्नति प्रयोग साधनों के अलावा दूसरे तरीकों से भी हो सकती है, अपेक्षाकृत नया है। कुछ प्रभावशाली शहरियों का विश्वास है कि यह विचार सत्रहवीं सदी की पैदावार है। जिन कलाओं की इस प्रकार उन्नति हुई है, उनमें चिकित्सा-कला भी शामिल है और यह बात उस समय की नई प्रयोगात्मक फिलॉस्फी के निर्माताओं के स्वप्नों में निहित थी। इन स्वप्नों को सत्य बनाने में उससे कहीं अधिक समय लगा जितना कभी सोचा भी नहीं गया था। दूसरी ओर प्रकृति को बदलने के लिए सब प्रकार की शक्तियाँ जुटा दी गई हैं, तीन सौ साल पहले उनकी कोई कल्पना भी नहीं कर सकता था, पुनरुत्थान के

समय ही से ईसाई देशों का इस पक्ष में मत बढ़ता जा रहा था कि मानव-जाति के कुछ दुखों का निदान मनुष्य के अपने प्रयत्नों से हो सकता है। यूटोपिया[१] में जिस कल्पित संसार को चित्रित किया गया है उसमें न सिर्फ दूध और शहद की नदियाँ बहेंगी, रोगों को दूर कर दिया जायेगा और दुखों का अन्त हो जायगा। शारीरिक दुखों को दूर करना न सिर्फ अच्छी बात थी बल्कि इसे ईसाई धर्म की स्थिति के अनुरूप समझा जाता था, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं था। जिन्हें सन्देह था वह बाइबिल का प्रमाण दे सकते थे।

बुक ऑफ जोब में बुराई की जो समस्या प्रस्तुत की गई, वह दर-असल मनुष्य के बुरे आचरण की समस्या नहीं है बल्कि समस्या यह है कि भले आदमी क्यों मुसीबतों का शिकार होते हैं। इस सवाल के जो उत्तर दिये गये हैं उनमें से किसी एक में यह नहीं बताया गया कि शरीर के कुछ रोग मानव प्रयत्न से दूर हो सकते हैं। लेकिन जोब की जो चिन्तायें थीं अठारहवीं सदी के पास उनका यही एक समझदारी का उत्तर है। यही वह उत्तर है जिसे विज्ञान के पक्षपाती हमेशा मुखरित करते रहे हैं। "चालीस साल पहले 'उदार'-हृदय ईसाइयों ने इसे स्वीकार कर लिया था लेकिन पिछले बीस साल से कुछ प्रोटेस्टैन्ट और कैथोलिक नेता इस सम्बन्ध में आशंका प्रकट कर रहे हैं। उदार परम्परा आज भी यही कहती है और पहले भी यही कहती रही है कि सांसारिक घटनाओं पर ध्यान दो और अपने सिद्धान्तों को यथार्थ के अनुरूप बनाओ।" और सांसारिक घटनाओं के तौर पर हिटलर, स्टालिन और बम-विस्फोटक के उदाहरण दिये जाते हैं।

नेक कामों से मुक्ति प्राप्त करने के विचार की मैं श्रद्धा से मुक्ति प्राप्त करने के विचार से तुलना नहीं करूँगा। मैं बुक ऑफ जोब की सीमा के भीतर रहना पसन्द करूँगा। इस सवाल के कि नेक चाल-चलन के स्त्री और पुरुष क्यों मुसीबतों के शिकार होते हैं, दो जवाब

---

(१) टामसमोर की प्रसिद्ध पुस्तक जो सोलहवीं सदी में लिखी गई।

देता है। एक तो यह कि संसार की व्यवस्था नहीं हो सकती। जीव एक वैरागी की भाँति इस तथ्य को मान लेता है और उसे कोई अफसोस नहीं रह जाता। यह दार्शनिक उत्तर है और दूसरा आध्यात्मिक है, वह जोव के अपने शब्दों में प्रस्तुत किया जा सकता है। जब ईसा ने उसकी उलझन हल कर दी तो जोव ने कहा, "मैंने अपने कानों से आपको सुना है, लेकिन अब मेरी आँखें आपको देखती हैं। इसलिए मैं अपने आप से घृणा करता हूँ। और मिट्टी और राख में पड़ा पश्चाताप करता हूँ।"

शब्दार्थ लिया जाय तो एक ईसाई अथवा कट्टर यहूदी के लिए धार्मिक दृष्टि से इस पैरे का बड़ा महत्त्व है। अगर प्रतीक रूप से लिया जाय तो जो लोग यहूदी और ईसाई धार्मिक साहित्य की व्यापक रूप से व्याख्या करते हैं उनकी दृष्टि में इससे गहरे आध्यात्मिक अर्थ हैं। कम-से-कम मैं ऐसा समझता हूँ, जो यह पूछते हैं कि आध्यात्मिक मूल्यों से आपका क्या अभिप्राय है ? मैं उनके उत्तर में बुक ऑफ जोव की इस घटना का उल्लेख करूँगा।

मैं जो कुछ कहना चाहता हूँ उसकी व्याख्या करने के लिए मैं मूल्यांकन का यह एक उदाहरण देता हूँ, जिसका मेरे निकट बहुत महत्त्व है। मैं यह कहूँगा कि अगर लोग संसार के प्रति अपने रवैये में कम विद्रोही हो गये हैं, भविष्य में कम डरते हैं और लोगों के प्रति अधिक संवेदनशील हो गये हैं तो वे अपने दुखों के कारण अधिक अध्यात्मवादी बने हैं। इसके विपरीत जो लोग अधिक कटु हो गये हैं और अधिक सशंक हो गये हैं तो उनका आध्यात्मिक पतन हुआ है। इस प्रकार के परिवर्तन ऐसे लोगों की बातों में कम व्यक्त होते हैं, मनुष्य की आध्यात्मिक स्थिति जीवन-दर्शन के बारे में उसके जबानी जमा-खर्च के बजाय उसके कार्यों से अधिक व्यक्त होती है। जिन निर्णयों का मैंने जिक्र किया है, उनका कुछ अर्थ और जिसे हम आध्यात्मिक मूल्यांकन कहते हैं उससे गहरा सम्बन्ध है।

उन्नीसवीं सदी का भौतिकवादी का लड़ाकू आशावाद इस प्रकार के दोहरे उत्तर का खंडन करता है। ऐसे व्यक्ति के निकट जोव की विपत्ति का एकमात्र कारण था—अज्ञान। सन् १८०० तक एक बुद्धिजीवी का यह विचार बन चुका था कि अगर वैज्ञानिक अपना कार्य जारी रखे और

अगर लोगों में उसकी बात मानने की बुद्धि हो तो बीमारी पर काबू पाया जा सकता है। मैं स्वीकार करता हूँ कि एक भविष्यवाणी के तौर पर आशावादियों का कोई भी बयान इतना सत्य सिद्ध नहीं हुआ जितना कि यह। आज जबकि निराशावादियों की बात हर तरफ सुनी जा रही है लोगों को यह बात भी समझाने की जरूरत है। जहाँ तक शारीरिक रोगों का सम्बन्ध है, आँसुओं के इस अध्यात्मवाद में जो अन्याय दिखाई देता था हमारे प्रयत्न उसे दूर करने में सफल हुए हैं। यह वह दुख था—शैतान उसकी हड्डियों और माँस को छू रहा था—जिसके कारण जोब ने भगवान् के न्याय पर शक किया है।

लेकिन बीमारियों का इलाज करना अथवा उनकी रोक-थाम करना एक बात है और यह कहना कि मानव-बुद्धि द्वारा सब प्रकार के दुःख दूर हो सकते हैं दूसरी बात है। फिर भी उन्नीसवीं सदी के और इस सदी के जो लोग यह दावा करते हैं कि विज्ञान के नेक कामों द्वारा मनुष्य की मुक्ति सम्भव है उनके लिए यह सिद्धान्त बन गया है। इस प्रकार का दृष्टिकोण द्वंद्वात्मक भौतिकवाद के सिद्धान्तों का अविच्छेद अंग बन गया है। इन सिद्धान्तों की एक व्याख्या क्रेमलिन की और उन लोगों की है जो चुपचाप और बिना सोचे-समझे उसका अनुसरण करते हैं। यह सरकारी फिलॉस्फी बन गई है। और दूसरी व्याख्या, मेरा विश्वास है, यूगोस्लाविया के कम्युनिस्टों की फिलॉस्फी है, जो कम लड़ाकू और कट्टर हैं। रूसी व्याख्या को अंग्रेजी बोलने वाले देशों के कुछ गैरकम्युनिस्ट मार्क्सवादी भी मानते हैं। लेकिन उसका कोई भी रूप है, उसमें मध्य उन्नीसवीं सदी की वही स्प्रिट निहित है जो अठारहवीं सदी के बुद्धिवादी आशावाद को आगे बढ़ा रही थी।

कट्टर द्वंद्वात्मक भौतिकवादी के निकट बुक ऑफ जोब निरी बकवाद है—जनता के लिए अफीम है। तमाम प्रकार की बुराइयों और मुसीबतों की समस्या का उसका उत्तर विशेष रूप मे यह है—"विज्ञान द्वारा सब बुराइयाँ दूर की जा सकती हैं।" "विज्ञान से उसका अभिप्राय वही विज्ञान है जिसका आधार द्वंद्वात्मक भौतिकवाद के सिद्धान्त हैं—यह सिद्धान्त न सिर्फ निर्जीव प्रकृति पर बल्कि मानव-समाज के विकास पर

भी लागू होते हैं। इन सिद्धान्तों में इन तीनों को—पूर्व पक्ष, विरोधी-पक्ष, समष्टि—जिसकी इस समीकरण की उष्णता वर्फ के वरावर है, पानी से व्याख्या की जाती है, विशेष रूप से हर प्रकार की व्याख्याओं में लागू किया जाता है।

द्वंद्वात्मक भौतिकवाद की सोवियत व्याख्या स्वीकार करने से जो राजनीतिक और भौतिक परिणाम हुए हैं, मैं उन पर वहस नहीं करना चाहता। दर्शन के रूप में मुझे यह समूचा सिद्धान्त ही निरर्थक जान पड़ता है। यह रूढ़िवादी और कट्टरवादी ढंग से उन वैज्ञानिकों का प्रतिनिधित्व करता है जो अपने आविष्कारों को व्यावहारिक रूप देना चाहते हैं। जो वैज्ञानिक आविष्कारकर्त्ता वन चुका है यह उसका सिद्धान्त है, क्योंकि यह उसके कार्य का गुणगान करता है वल्कि इससे भी अधिक वह यह नहीं कहता कि वैज्ञानिक एक आविष्कारकर्त्ता के अतिरिक्त कभी कुछ और था अथवा हो सकता था। दरअसल कुछ गैर-मार्क्सवादियों ने भी इसका वहुत प्रचार किया है। मैं समझता हूँ कि वे अनजाने ही कम्युनिस्ट प्रोपेगंडा का शिकार हो गये।

मैंने जान-बूझ कर आपके सामने यह दो प्रकार के उदाहरण—बुक ऑफ जोव उसके शब्दार्थ में अथवा द्वंद्वात्मक भौतिकवाद रखे हैं। मेरा खयाल है कि मैंने अपना रुझान भी आपके सामने पहले ही रख दिया है। मैं उन्नीसवीं सदी के इस आशावाद का निषेध नहीं करता कि विज्ञान की सहायता से तमाम व्यावहारिक कलाओं (जिनमें मानव सम्वन्धों की कला भी शामिल है) की उन्नति होगी। मगर मैं "सिद्धान्त के तौर पर" की युक्ति लेकर यह नहीं कहूँगा कि विज्ञान यहाँ तक जा सकता है। मुझे यह विश्वास है कि अगली सदी के समुचित वातावरण में भी अनिश्चितता और प्रयोग-ज्ञान की मात्रा वहुत रहेगी। जहाँ तक बुक ऑफ जोव का सम्वन्ध है, मैं इस उत्तर का कि सांसारिक मूल्यों के समूचे क्षत्र में जो खोज हो रही है, इसे उसमें प्रवेश करने के लिए इस्तेमाल करता हूँ।

इससे पहले कि मैं यह वताऊँ कि खोज की इस दुनिया का जिसमें हम तुम, वैज्ञानिक और दूसरे लोग नित्य काम कर रहे हैं, आध्यात्मिक

मूल्यों की दुनिया से क्या सम्बन्ध है, मैं यह बताना पसन्द करूँगा कि वहुत से वैज्ञानिक आधुनिक भौतिक विज्ञान की एक दूसरे ढंग से व्याख्या करते हैं। उनके लिए न सिर्फ दुनिया की एक बनावट है आधुनिक भौतिक-विज्ञान जिसका एक अस्पष्ट चित्र प्रस्तुत करता है (वे मानते हैं कि इसकी व्याख्या करना कठिन है) इसके अतिरिक्त दुनिया के इतिहास का भी एक महत्त्व है। यहाँ वे लोग अलग हो जाते हैं जो मेरे पहले भाषण में नकशा बनाने वाले के उदाहरण ही को सब कुछ समझते हैं। कुछ प्राकृतिक विकासवाद के दर्शन को मानेंगे जो उन्नीसवीं सदी के भौतिकवादियों से भिन्न नहीं हैं। दूसरे नये भौतिक विज्ञान में और इससे भी अधिक आधुनिकतम विश्व-विद्या में ऐसे धार्मिक तत्त्व देखेंगे जिनका सम्बन्ध यहूदी ईसाई परम्परा से है।

आधुनिक विचार में दूसरी प्रवृत्ति की व्याख्या के लिए मैं हाल के दो लेखकों को उद्धृत करता हूँ। सर एडमंड ह्विटेकर अपनी पुस्तक "स्पेस और स्प्रिट" में जो सन् १९४६ में प्रकाशित हुई यह मत व्यक्त करता है:—"गणित भौतिक विज्ञान की एकमात्र देन यह है कि उसने विश्व की एक ऐसी योजना बनायी है, जिस पर भरोसा किया जा सकता है। (अर्थात् उसकी भविष्यवाणियाँ अनुभव से सत्य सिद्ध होती रही हैं।) और उसे उस समय तक पीछे भी ले जाया जा सकता है जब कोई सचेत जीवन उत्पन्न नहीं हुआ था।" वह आगे लिखता है, "आधुनिक वैज्ञानिक की पीढ़ी पुनरुत्थान के मानववादियों से नहीं मिलती, बल्कि बारहवीं और तेरहवीं सदी के स्कूल वालों से जा मिलती है।"

दुनिया के सिद्धान्तों के बारे में अपने विचारों और दलीलों से ईश्वर के अस्तित्व को सिद्ध करने के लिए वह यह नतीजे निकालता है—

"इससे इनकार नहीं किया जा सकता कि जिस अन्वेषणकर्त्ता की शिक्षा आधुनिक वैज्ञानिक ढंग से हुई है उसके लिए प्राकृतिक अध्यात्म विद्या कोई सीधी-सी बात नहीं है। इस समय के कार्य का उद्देश्य उन अध्यात्मवादियों के लिए, जो विज्ञान के लोग नहीं हैं, यह जताना रहा है कि कठिनाइयाँ क्या हैं और वैज्ञानिक अन्वेषणकर्त्ताओं को यह दिखाना

रहा है कि वे अब इतने जबर्दस्त नहीं रहे जितने कभी समझे जाते थे, क्योंकि भौतिक संसार को अधिक गहराई में जाकर समझने से भगवान के मानने वाले के सामने नये मार्ग और नई सम्भावनायें उत्पन्न हो गई हैं।

अब पास्कोल जार्डन की पुस्तक "बीसवीं सदी का भौतिक विज्ञान" लीजिए जो १९४४ में प्रकाशित हुई। इसमें वह विचार बड़ी सफाई से व्यक्त किये गये हैं जो मैंने अपने दूसरे भाषण में संक्षिप्त रूप से आपके सामने रखे। नई परिस्थिति से जो कठिनाइयाँ उत्पन्त हुई हैं लेखक ने उनसे कन्नी नहीं काटी। उदाहरण के लिये वह लिखता है, "विशुद्ध आधुनिक दृष्टिकोण से परमाणु सम्बन्धी पुराने विचार का जितना खंडन होता है उतना ही उसका समर्थन भी होता है, क्योंकि नया दृष्टिकोण चित्र के सिर्फ एक पहलू को देखता है और दूसरे बुनियादी पहलू को नजर-अंदाज करता है। नया दृष्टिकोण अगर परमाणु को उसके स्पष्ट शारीरिक गुण से वंचित करता है और गणित के फार्मूले के रूप में सिर्फ ऊपरी ढाँचे को बाकी रहने देता है तो इससे भी हमारे ज्ञान सम्बन्धी इस सिद्धान्त का समर्थन होता है कि भौतिक विज्ञान की खोज का उद्देश्य यह नहीं कि ऊपर से दिखाई देने वाली दुनिया के पीछे चीजों का जो वास्तविक अस्तित्व है उसे प्रगट किया जाय; बल्कि उसका उद्देश्य ऊपर से दिखाई देने वाली दुनिया को कंट्रोल करने के लिए विचार-पद्धति को उन्नति देना है।" यह और ऐसे ही दूसरे उदाहरणों से जाहिर है कि जार्डन उन लोगों का समर्थन करता है जो वैज्ञानिक सिद्धान्तों को आदर्श नहीं नीतियाँ मानते हैं और विश्व-विद्या सम्बन्धी आधुनिक विचारों का उसने जो वर्णन किया है वह कतई तौर पर उस भूगोलशास्त्री का वर्णन किया है जिसने द्वीप को भीतर जाकर भली-भाँति देखा है, क्योंकि वह लिखता है, "यह बात मानी जा सकती है कि महान् सूर्य नन्हीं धरती की अपेक्षा जो उसके अस्तित्व से अलग कर दी गई, ब्रह्मांड का पुराना निवासी है, लेकिन जैसा कि हम देखते हैं बात सिर्फ इतनी-सी ही नहीं (वह रेडियम के प्रकाश छोड़ने के आँकड़ों से धरती की उम्र की ओर संकेत कर रहा है) उल्कापातों की उम्र निश्चित करने के परिणाम भी

जिनकी खोज रेडियम प्रकाश-क्रिया द्वारा सम्भव है, कुछ कम महत्त्व नहीं रखते······आओ हम अतीत में झाँककर देखें। धरती का व्यास, जो रोशनी की गति से बढ़ रहा है, वह अब की अपेक्षा पहले छोटा था, दुनिया का जो विकास हुआ अगर हम मानसिक रूप से उसे पीछे की तरफ सोचना शुरू करें तो हम एक ऐसे नुक्ते पर पहुँच जाएँगे जहाँ—सब कुछ खत्म हो जाता है, अथवा जहाँ हर चीज की शुरूआत होती है···खरबों साल पहले······शुरू का नन्हा ब्रह्मांड एक विस्फोट से निकला।" वह अपनी पुस्तक यों खत्म करता है :—

"यह महत्त्वपूर्ण बात है कि आधुनिक प्राकृतिक खोज ऐसे ज्ञान और विचारों को सामने लाती है जो हमारी भावनाओं को एसी दिशाओं में ले जाते हैं जो लामैंट्री और हाकेल के समय की प्राकृतिक खोज की दिशा से मुख्तलिफ है। सापेक्षता और विश्व-विद्या के गणित-सम्बन्धी सिद्धान्तों पर आधुनिक पुस्तक का लेखक बजा तौर पर यह कह सकता है कि दुनिया के अतीत और भविष्य के बारे में हमारी वैज्ञानिक खोज को मानव आशाओं और इच्छाओं अथवा सृष्टि की उत्पत्ति के सम्बन्धी धार्मिक सिद्धान्तों से प्रभावित नहीं होना चाहिए। यह भी तो देखने की बात है कि उन्नति की इस स्थिति में विज्ञान को फिर यह चेतावनी देने की जरूरत पड़ी है।

"लेकिन जब हम इस चेतावनी को स्वीकार कर लेते हैं और जब वैज्ञानिक खोज का इसके अतिरिक्त और कुछ उद्देश्य नहीं बताते कि वह सत्य का ज्ञान प्राप्त करने में प्रतत्नशील है तो फिर जो परिणाम निकल चुके हैं उनके बारे में स्वप्न देखने से हमें कौन रोकेगा ?

"और निश्चय ही संसार का यह चित्र खरबों साल पहले छोड़ी गई फुलझड़ियाँ हमारे सामने लाता है और मिगेल दे उनामुनो के इस प्रश्न पर सोचने की दावत देता है कि सारी दुनिया जिसमें हम भी शामिल हैं भगवान का स्वप्नमात्र ही तो नहीं, शायद प्रार्थना और पूजा-पाठ का अर्थ इसके अतिरिक्त और कुछ न हो कि वह और ऊँघता रहे ताकि वह जाग न पड़े और हमारे इस स्वप्न को खत्म न कर दे।"

मैंने दो लेखकों का उदाहरण इसलिए दिया है कि आधुनिक विज्ञान

और आधुनिक मानव की स्थिति के आंपसी सम्बन्धों की हाल ही की व्याख्या में एक विशेष रुझान के साथ न्याय हो सके। मेरे पास इतना समय नहीं कि आधुनिक विज्ञान में हमारा विश्वास विश्व के इतिहास और बनावट की जो व्याख्या करता है उसकी न्यू टेस्टामेंट के विश्वास के साथ तुलना करूँ, जो अगर उसका शब्दार्थ लिया जाय तो पदार्थ और शक्ति की अक्षुण्णता सम्बन्धी नियमों का प्रमाणित होना जरूरी नहीं मानता। मैंने धर्म के नियमों को मानने वालों को जो विश्व-विद्या सम्बन्धी नये सिद्धान्तों का सृष्टि और सृष्टिकर्त्ता के अस्तित्व के प्रमाण के तौर पर स्वागत करेंगे यह प्रयत्न करते नहीं देखा कि वह खाली कब्र की समस्या को किसी प्रकार की वैज्ञानिक धारणाओं के रूप में प्रस्तुत करें।

मेरा अपना दृष्टिकोण कुछ और है। वैज्ञानिक सिद्धान्त वैज्ञानिकों के अमल की रहनुमाई करते हैं जो धीरे-धीरे भौतिक संसार के बारे में हमारी सहज बुद्धि के विचारों का भाग बन जाते हैं। नेकी और बदी की सदियों पुरानी समस्या पर उनका कुछ भी असर नहीं पड़ता। मैं जोव के स्वप्न के साथ अर्थ जोड़ता हूँ, लेकिन प्रतीकात्मक अर्थ। इन अर्थों का अन्वेषण आध्यात्मिक मूल्यों का अन्वेषण होगा।

द्वंद्वात्मक भौतिकवादी और कुछ कट्टर ईश्वरवादी सवाल करेंगे कि जिस विश्व-अन्वेषण की ओर मैंने संकेत किया है कि क्या वह एक पौराणिक कथा को एक दूसरा नाम देने से अधिक भी कुछ और है। वे तमाम नैतिक आचरण का सम्बन्ध समाज-कल्याण से जोड़ेंगे। कोई न कोई भौतिकवादी विश्व मान्यता सिद्धान्त के एकीकरण का आधार बन जायगी और आध्यात्मिक व्याख्या के लिए कोई गुंजायश नहीं रह जायेगी। लगभग निश्चित रूप से लोग यह मानेंगे कि अन्त में समाज-विज्ञान और जीव-विज्ञान की उन्नति का नतीजा यह होगा कि यहूदी और ईसाई धर्म की परम्पराओं का स्थान विज्ञान की मूल्य धारणायें ग्रहण कर लेंगी। अर्थात् किसी न किसी दिन जब मानसिक चिकित्सा विज्ञान, सामाजिक मनोविज्ञान, वनस्पति विज्ञान और मनुष्य शरीर सम्बन्धी विज्ञान सारे अन्वेषण क्षेत्र पर छा जायेगा। तो भी वे इस बयान

को चुनौती नहीं दे सकते कि आज बहुत सी मूल्य धारणाओं में ऐसे तत्त्व शामिल हैं, जिनका विज्ञान से कोई सम्बन्ध नहीं। सवाल यह रह जाता है कि क्या वे मूल धारणायें जिनका वैज्ञानिक विचारों से कोई सम्बन्ध नहीं सैद्धान्तिक तौर पर उनसे बदल जायेंगी जिनकी शुरुआत वैज्ञानिक अन्वेषण से होगी ?

मैंने अपने भाषणों में सिद्धान्त के तौर पर दलील का कई बार उल्लेख किया है और इस बारे में अपना सन्देह भी प्रकट किया है। मुझे लगता है कि इसके इस्तेमाल से कोई नई धारणा बना रहा है और खुद अपने आपसे आगे बढ़ जाना चाहता है। मुझे सन्देह है कि इस प्रकार की दलीलों के इस्तेमाल से भौतिक विज्ञान की उन्नति हुई है यद्यपि इससे अक्सर कुछ वैज्ञानिकों के अहं की तुष्टि हुई है। जिस विस्तृत क्षेत्र का मैं अन्वेषण करना चाहता हूँ उसमें इसके लागू करने की गुंजायश नहीं। यह कहने से कुछ लाभ नहीं कि असूल के तौर पर दुनिया के बारे में हमारे सहज बुद्धि के विचारों और मानव आचरण, और हमारे शिष्टाचार के सारे नियमों और हमारे नैतिक विश्वासों का स्थान ऐसे विचार ले लेंगे "जो हमारे अनुभव और निरीक्षण के वाहर बढ़ रहे हैं।" भौतिक विज्ञान के क्षेत्र में भी ऐसे बड़े-बड़े स्थान हैं जहाँ सिर्फ प्रयोग विज्ञान ही वैज्ञानिकों के आचरण का वैज्ञानिक के तौर पर पथ-प्रदर्शन करता है। आप कह सकते हैं कि अपनी नैतिकता के नाते एक वैज्ञानिक का यह विश्वास होना चाहिए कि यह सब स्थान खत्म हो जायेंगे। शायद यह सच हो, लेकिन मुझे इसमें सन्देह है। एक उत्साही वैज्ञानिक का जो विश्वास है वह यह है कि प्रयोग ज्ञान की मात्रा दिन-दिन कम से कम होती जायेगी। उसे एक सावधान अन्वेषणकर्त्ता के नाते व्यर्थ के दावे नहीं करने चाहिएँ।

एक भौतिकवादी विश्व-धारणा के तौर पर यह एकीकरण करेगा। मुझे इसमें भी सन्देह है, क्योंकि यह अपनी असफलता प्रकट कर चुका है। तमाम दुनिया की हर एक चीज के बारे में जानकारी प्राप्त करने का इसका प्रयत्न भी मुझे असंतोषजनक जान पड़ता है, क्योंकि यह अपूर्ण है। मानव-स्वभाव का परोपकारी और आदर्शवादी पहलू दिखाने में भी

यह असफल रहा है। मैं जिन तथ्यों का बहुत ही उच्च महत्त्व समझता हूँ वे विज्ञान के मानव इतिहास के तथ्य हैं और यह उन्हें जमा करने में असफल रहा है। यही निस्वार्थ ढंग हैं जिनमें मानव जाति अक्सर दया, प्रेम, मित्रता, त्याग और दूसरों का दुख दूर करने की भावना से काम करती है। सारांश यह कि यह 'नेकी' की समस्या है 'बदी' की नहीं। इसके लिए मानव-व्यक्तित्व उससे कुछ अधिक ज्ञान प्राप्त करने की आवश्यकता है जितना कि प्राकृतिक नैतिकतावादी जुटाते हैं। दूसरी ओर ऐसी जानकारी जिसमें आध्यत्मिक मूल्य, आधुनिक भौतिक विज्ञान, वनस्पति विज्ञान और विश्व विद्या सब कुछ शामिल करने का प्रयत्न किया जाता है, मेरे ख्याल में हद से बढ़ना है। एकीकरण का सिद्धान्त चाहे पदार्थ और आत्मा का द्वैतवाद, यन्त्रवाद, रूपवाद अथवा आदर्शवाद का कोई रूप है यह सारा प्रयत्न मुझे गलत दिशा में जान पड़ता है। मैं अनुभव के विशेष परिमित क्षेत्र में कुछ अधिक उचित अन्वेषण को पसन्द करता हूँ। इनमें से एक में ऐसे अनुभव शामिल होंगे जिन्हें आध्यात्मिक मूल्यों की पद्धति के रूप में व्यवस्थित किया जा सके। इन परिमित क्षेत्रों में से हर एक को मैं विश्व-अन्वेषण का नाम देना चाहता हूँ। मैं ऐसा सिर्फ उन लोगों पर एतराज के लिए करना चाहता हूँ जो असूल के तौर पर दलील द्वारा एक प्रकार के अन्वेषण की मान्यताओं का दूसरी प्रकार के अन्वेषण की मान्यताओं से सम्बन्ध स्थापित करना चाहते हैं। इस प्रकार का सम्बन्ध जोड़ना उन लोगों का स्वभाव बन गया है जो विज्ञान को आदर्श अथवा एक हिस्से के नक्शे को तमाम विश्व का नक्शा मानते हैं। लेकिन जो वैज्ञानिक मान्यताओं और विचारों की नीति और अपने कार्य को गाइड मानते हैं, उन्हें अलग-अलग अन्वेषणों की मान्यताओं में सम्बन्ध जोड़ने की जरूरत नहीं रहती। अगर दो नीतियाँ दो क्षेत्रों में अमल के गाइड के तौर पर एक दूसरे का विरोध करें तभी उनके दरम्यान अनुभवों और निरीक्षण की जाँच सम्भव हो सकती है। विरोध ही से काम करने की बहुत सी सीमित धारणायें उत्पन्न होती हैं। और दलीलें उत्पन्न होती हैं जिनके कारण अन्त में हाँ या नहीं में एक स्पष्ट उत्तर मिल जाता है। लेकिन अगर दोनों नीतियों को आपस में टकराने का प्रयत्न

असफल रहे, जैसा कि प्रकाश के परमाणु और तरंग सिद्धान्तों में रहा है तब यह सहज में कहा जा सकता है कि दोनों सिद्धान्त एक दूसरे से इतने भिन्न हैं कि वे अन्वेषण की अलग-अलग दुनियाएँ बनाते हैं। जो लोग 'असूल के तौर पर' की दलील के कायल हैं उन्होंने भौतिक विज्ञान में इस प्रकार की भिन्नता की सम्भावना से वर्षों पहले इनकार कर दिया था।

आज अन्वेषण की कितनी दुनियाएँ स्वीकार की जा सकती हैं, मैं यह नहीं बताऊँगा। व्यावहारिक उद्देश्य के लिए दो-तीन चुनी जा सकती हैं और कुछ नियमों और मान्यताओं द्वारा उन्हें एक समझा जा सकता है। एक तरह से अन्वेषण की दो दुनियाओं की भिन्नताओं को समझने के लिए एक सिद्धान्त बन सकता है। आधुनिक भौतिक विज्ञान में यही कुछ हुआ है, कम से कम विज्ञान के हाल के इतिहास में यही समझ पाया हूँ। जब हर एक क्षेत्र में *काम की एक बहुत ही परिमित धारणा संख्यात्मक रूप* से बना ली जाये, तब गणित की दलीलें इस्तेमाल करके तो एक सिद्धान्त को बहुत ही उपयोगी नीति के तौर पर बयान किया जा सकता है, इतनी उपयोगी कि अगर पूर्ण रूप से इसकी शुरूआत का पता न लगाया जाये तब आदमी सहज में यह धोखा खा सकता है कि यह वाकई दुनिया के एक भाग का नकशा है।

मेरा ख्याल है कि प्राकृतिक विज्ञान के आम क्षेत्र में जो अन्वेषण चिरकाल से प्रकृति की समता को निर्धारित करते हैं वे अन्वेषण की एक विशेष दुनिया (शायद ऐसी दुनियाओं का एक ग्रुप) बनाते हैं। उदाहरण के लिए मैं यह पूछता हूँ कि कीटाणु विज्ञान के विचारों का असूल के तौर पर वनस्पति विज्ञान से क्या सम्बन्ध है ? ऐसे सवाल पैदा होते हैं। उदाहरण के लिए जब कभी एक विश्व-विद्याशास्त्री, जीव-विद्याशास्त्री और रसायनशास्त्री जिन्दगी की शुरूआत पर विचार करते हैं तब ऐसे सवाल उठ खड़े होते हैं। जिन्दगी की शुरूआत के बारे में बहुत से सिद्धान्त इस अर्थ में कदाचित् वैज्ञानिक नहीं हैं कि वे कर्म के पथ-प्रदर्शक बन सकें। वे महज कल्पित धारणायें हैं और उन्हें अब कोई नहीं जानता कि नये अनुभवों और निरीक्षणों से उनका सम्बन्ध कैसे जोड़ा जाये। इस

सिलसिले में जनसाधारण को काफी परेशानी उठानी पड़ती है। लोग जीवन की शुरूआत (अथवा कड़े पत्थर या पैट्रोलियम की शुरूआत) के बारे में नये सिद्धान्त को, जो एक और महज़ कल्पित धारणा है, ऐसे सिद्धान्त से अलग नहीं पहचान सकते जो ऐसे नतीजों को जन्म देता है, जिनकी परख हो सकती है। विश्व-विद्यालय के क्षेत्र में कल्पना की अपेक्षा नहीं की जा सकती, लेकिन कल्पना की प्रत्येक उड़ान का अधिक प्रचार होने से लोग गड़बड़ा जाते हैं और श्रद्धा को प्रोत्साहन मिलता है।

वैज्ञानिक सिद्धान्तों के वारे में मैंने जो दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है वह सीमित नीतियों का है, विश्वव्यापी आदर्श का नहीं। मैं जानता हूँ कि इस पर यह कहकर हमला किया जायेगा कि मनुष्य विचारशील जीव है। इसे पलायनवाद और रहस्यवाद का नाम दिया जायेगा। अथवा एक आलसी मनुष्य का दुखप्रद कठिनाइयों से निकलने का रास्ता कहा जायेगा। एक धार्मिक विचार को मानने वाले जो मनुष्य की सृष्टि, स्वभाव और अन्त के वारे में विस्तार से वताता है, निश्चय ही दुनिया के वारे में ऐसे विचार को रद्द करेंगे जो सामयिक है और अधूरा है और जिसे मैं प्रस्तुत कर रहा हूँ। यह एक अजीब वात है कि भौतिकवादी नास्तिकों की प्रतिक्रिया भी ऐसी ही होगी। मैं अपने पक्ष का समर्थन करने के लिए इकाई सम्बन्धी पद्धतियों के प्रतिनिधियों को, जिनमें वह पद्धतियाँ भी शामिल हैं जिनकी धार्मिक परिभापा में व्याख्या की गई है, बुलाऊँगा। वे वाद-विवाद द्वारा अपने निचारों की विभिन्नता को प्रकट करेंगे। यह स्पष्ट है कि वे किसी एक बात पर सहमत नहीं होंगे। दूसरा साक्षी वह आधुनिक भौतिक वैज्ञानिक होगा जिसे अपने पूर्वजों की आत्मा को जवाव देना होता है। मैं इस वात पर अधिक जोर नहीं देना चाहता, क्योंकि मैं पहले ही यह कह चुका हूँ कि जहाँ तक परमाणु और तरंगों का सम्बन्ध है उन्नीसवीं सदी के भौतिक वैज्ञानिकों की मौजूदा चित्र के वारे में यह राय होगी कि दो विभिन्न सिद्धान्त आस-पास रखे हुए हैं। यद्यपि उनमें सिद्धान्त रूप से कोई समानता नहीं।

जहाँ तक विज्ञान की प्रगति का सम्बन्ध है दुनिया के बारे में ऐसा दृष्टिकोण जो सैद्धान्तिक रूप में सिर्फ एक विश्व-धारणा को अस्वीकृत

करता है पलायनवादी नहीं हो सकता, क्योंकि अगर कोई वैज्ञानिक सिद्धान्तों को अन्वेषण के लिए पथ-प्रदर्शक के तौर पर लेता है तो हर एक सिद्धान्त अनुभव और निरीक्षण की कसौटी पर परखा जाने के लिए खुला रहता है। ऐसा दृष्टिकोण उन मान्यताओं के बारे में जो एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में ले जाई जाती हैं शंका प्रगट करता है। यह उन सब दलीलों को शक की दृष्टि से देखता है जिनका आधार वास्तविक निरीक्षण और अनुभव पर नहीं होता। यह उन लोगों से प्रमाण माँगता है जो यह कहते हैं कि व्यवहार अथवा सैद्धान्तिक रूप से जितने भी विचार हैं उन सब की अन्वेषण की दुनिया एक है। यह दृष्टिकोण विभिन्न वैज्ञानिक सिद्धान्तों में एक निकट सम्बन्ध स्थापित करने के प्रयत्न की मनाही नहीं करता। इसके विपरीत चूँकि दो सिद्धान्तों की अनुरूपता प्रत्यक्ष रूप से विरोधी दिखाई देने वाले परिणामों द्वारा ही निश्चित हो सकती है कल्पना नहीं की जा सकती। इसलिए कल्पित चिंतन अथवा निराधार दलीलबाजी के बजाय निरीक्षण और अनुभव पर जोर दिया जाता है।

"कर्मशील व्यक्ति को विश्वास और अन्वेपणकर्त्ता पर संदेह करना पड़ता है और वैज्ञानिक अन्वेषणकर्त्ता दोनों।" चार्ल्स रास पीयर्स का यह कथन हमारा ध्यान उस दोहरे उद्देश्य की ओर दिलायेगा जो हमारे सामान्य विचारों और मान्यताओं का जिनके आधार पर हम वैज्ञानिक अन्वेषणकर्त्ता जो काम करते हैं कुछ सामयिक महत्त्व भी होना चाहिये। अगर एक पहले भाषण की शब्दावली इस्तेमाल की जाये तो वे एक बड़े पैमाने पर काम करने का आधार है। दूसरी ओर वैज्ञानिक खोजों में भी कुछ विचार जो विज्ञान की शुरू की उन्नति के दिनों में पैदा हुए उनका कुछ स्थायी महत्त्व भी होना चाहिये। प्रगति के लिये यह बहुत ही जरूरी है। अगर एक वैज्ञानिक को जब भी वह प्रयोगशाला में दाखिल हो उन सिद्धान्तों के बारे में जिन्हें वह सही मानता है पीछे की ओर लौटना पड़े, तो वह पागल हो जायेगा।

जब वैज्ञानिक प्रयोगशाला से बाहर जाता है और खोज के अलावा जिन्दगी के दूसरे कामों में भाग लेता है तो कर्मशील व्यक्ति के नाते उसे विश्वास करना पड़ता है। फिलॉस्फर को भी जिसका पेशा ही सन्देह करना

है, इसी मजबूरी का सामना है। हम सब समझदार व्यक्तियों के नाते बिना तनिक सन्देह बहुत से ऐसे विचारों को स्वीकार कर लेते हैं जिनकी शुरूआत के बारे में हम कुछ नहीं जानते, क्योंकि वे उस समय से चले आते हैं, जब से हमने होश सँभाला है। कम से कम बच्चों के तौर पर हमने त्रिलोक अथवा दूसरे व्यक्तियों के अस्तित्व पर कभी सन्देह नहीं किया। दूसरे शब्दों में कुछ विचारों से हमारा सम्बन्ध इतना घनिष्ठ है है कि वे विश्वास बन जाते हैं। दूसरे लोगों का अस्तित्व, अतीत और भविष्य वाला संसार और प्रकृति की आंशिक एकरूपता सहजबुद्धि विश्वास की बातें हैं। इनमें हमारे विश्वास की मात्रा इतनी अधिक है कि मैं नहीं समझता कि कोई इस पर इतना भी सन्देह करेगा जितना वह न्यूट्रोनों के अस्तित्व अथवा बीमारी के कीट सिद्धान्त पर करता है।

वैज्ञानिकों का विज्ञान के कुछ सिद्धान्तों से इतना ही घनिष्ठ लगाव होता है, जितना हमारा वास्तविक संसार की चट्टानों, पेड़ों और लोगों के बारे में विचारों से होता है। जाहिर है कि कहीं भी कोई सीधा मार्ग नहीं। एक ज्योतिषी अथवा एक वनस्पतिशास्त्री के लिए भौतिक विज्ञान और रसायन के सिद्धान्तों में जो खरबों साल से चले आते हैं अथवा सृष्टि के इतिहास की वास्तविकता में विश्वास करना जरूरी है। अगर ऐसे दो वैज्ञानिकों के उदाहरण लिये जायें जो सामयिक घटनाओं की खोज करते हैं तो परमाणु भौतिक वैज्ञानिकों अथवा कीट-विद्याशास्त्री के लिए इस विश्वास का होना जरूरी नहीं और उनमें इसका सर्वथा अभाव होता है। एक जीवित पदार्थ रसायनशास्त्री का इस बात में विश्वास कि एक परमाणु के अणु त्रिदिशा रूप में व्यवस्थित होते हैं इतना ही अधिक होता है जितना दूसरे लोगों के अस्तित्व में। लेकिन यह बात देखने की है कि उन्नीसवीं सदी के उसके पूर्वज इन्हीं विचारों को बहुत ही सामयिक समझते थे। लेकिन इन उदाहरणों से कोई यह नतीजा न निकाले कि विज्ञान का इतिहास ही सामयिक विचार विश्वास का इतिहास है। मैं आपको याद दिलाता हूँ कि सृजन सम्बन्धी सिद्धान्त, उष्णता की तरलता और ईथर के प्रकाश का सिद्धान्त और यह विचार कि अणुओं के स्थान को ठीक-ठीक निश्चित किया जा सकता है त्याग दिये गये हैं।

एक कर्मयोगी के नाते हम सबका एक निर्जीव प्रकार की दुनिया ही से जो पौधों और पशुओं से भरी हुई है, वास्ता नहीं पड़ता, बल्कि दूसरे लोगों से भी पड़ता है। हमारे पास न सिर्फ वास्तविक संसार के बारे में सहज-बुद्धि के विचार होना जरूरी है बल्कि दूसरें लोगों के अस्तित्व को स्वीकार करने वाले कुछ सामान्य नियम भी दरकार हैं। विलियम. जेम्स के शब्दों में हमें "असत्यवत् भौतिक, नैतिक और आध्यात्मिक मोटापे" से इतनी सुरीति से व्यवहार करना चाहिए जितना हम कर सकते हैं। सिर्फ एक अन्वेषणकर्त्ता के नाते, दार्शनिक, वैज्ञानिक या कोई आदमी इस मोटापे के एक टुकड़े को अलग करके दिखा सकता है।

पश्चिम के बहुत से लोगों के लिए मनुष्यों के आपसी व्यवहार में जिन विचारों का कुछ महत्त्व है वे धार्मिक नियम हैं। कुछेक के लिए वे सामयिक विश्वास हैं, दूसरों के लिए विचार हैं जिनसे उनके लगाव की मात्रा बहुत ही घनिष्ठ है। यह विशेष रूप से उनके लिए सत्य है जिन्होंने ईसाइयत के कट्टर धार्मिक वातावरण में परवरिश पाई है अथवा उनक लिए जिन्होंने उस ढंग से अपना धर्म बदल लिया है जिस ढंग से विलियम जेम्स ने अपनी पुस्तक "विभिन्न धार्मिक अनुभव" में कहा है। इस विश्वास में कि एक दूसरे लोगों का अस्तित्व है और भूतत्त्व-विद्याशास्त्री के इस विश्वास में कि भूतत्त्व विद्या का एक अतीत है, समानता से इनकार नहीं किया जा सकता। इसलिए मैं उनसे झगड़ा मोल लेंने को तैयार नहीं हूँ जो यह कहते हैं कि काल्विन के भगवान, अथवा कैथोलिक धर्म के भगवान अथवा यहूदियों के जेहोवाह में विश्वास उसी प्रकार का विश्वास है, जैसा वास्तविक बाहरी दुनिया में। लेकिन मैं भगवान में ऐसे विश्वास पर जरूर ऐतराज करूँगा जिसकी दूसरे लोगों के अस्तित्व के विश्वास से कोई समानता नहीं। जिसका प्रत्येक व्यक्ति के लिए सिवाय उसके जो किसी सुनसान और एकान्त द्वीप में रहता है, कुछ-न-कुछ मतलब है।

वे लोग जिनकी कुछ मान्यताओं में इतनी निष्ठा है कि वे अपने धर्म में कट्टरपंथी हैं, उनका यह दृढ़ विश्वास हो सकता है कि उनका ईश्वर-ज्ञान न सिर्फ दुरुस्त है बल्कि वास्तविक भी है। दूसरे लोगों के

विश्वास की मात्रा उस धर्म के विभिन्न अंशों से कम या ज्यादा हो सकती है। लेकिन आम तौर पर वे भी जिनका किसी धर्म में तनिक भी विश्वास है, जहाँ मैंने अपने भाषण में "आध्यात्मिक" शब्द इस्तेमाल किया है उसके बजाये 'धार्मिक' शब्द का इस्तेमाल पसन्द करेंगे। वे शायद इस बात से सहमत नहीं होंगे कि धार्मिक मूल्यों पर निर्धारित अन्वेषण की कोई अलग दुनिया है, क्योंकि उनका ईश्वर-ज्ञान एक विश्व-धारणा को मानता है, लेकिन जिसे मैं आध्यात्मिक मूल्यों के राज्य की वास्तविकता कहता हूँ, उस पर उन्हें कोई सन्देह नहीं होगा।

मैं अपने अन्तिम शब्द उन लोगों से नहीं कह रहा जिनका ईश्वर-ज्ञान इतना दृढ़ है कि उसकी एक बाहरी दुनिया सम्बन्धी वास्तविकता के विश्वास से तुलना की जा सकती है। न उनसे कह रहा हूँ जिनके विश्व-चित्र में आध्यात्मिक मूल्यों का कोई स्थान ही नहीं है। न तो बाइबेल का प्रतीकात्मक अर्थ करने के बजाय शाब्दिक अर्थ करने वाले ईसाई के और न भौतिकवादी के निकट उन शब्दों का कोई अर्थ है जो मैं कहने जा रहा हूँ। मगर दूसरों से मैं यह कहना चाहूँगा कि बहुत से वातावरणों के सम्बन्ध में जिनकी हमें कर्मयोगी के नाते जरूरत पड़ती है, कम-से-कम सामयिक विश्वास दरकार हैं। इनकी वैज्ञानिक खोज हो सकती है लेकिन जब तक प्रयोग-ज्ञान की मात्रा बहुत ही कम नहीं हो जाती, हमें आचरण के उन्हीं नियमों के अनुसार काम करना पड़ेगा जो वैज्ञानिक नहीं हैं। अगर ऐसा है तो मुझे सन्देह है कि हम इन नियमों को किसी निश्चित योजना का रूप दे सकते हैं। वैज्ञानिक, चाहे वह भौतिक वैज्ञानिक हो अथवा समाजशास्त्री, जो प्रमाण जुटाता है उससे योजना पर किसी प्रकार का भी प्रभाव नहीं पड़ता। प्रमाण का आधार निजी अनुभव अथवा इतिहास क अनुभवों पर होता है। वह वस्तुओं और व्यक्तियों की दुनिया के बारे में सहज-बुद्धि की मान्यताओं की सूची में आता है। लोगों के विचारों की पृष्ठभूमि में ऐसा लगता है कि एक विश्व-धारणा होती है जिससे उनका बहुत ही अधिक लगाव होता है। जैसा कि मुझे आत्मा सम्बन्धी समस्याओं में देखने में अपनी योग्यता में सन्देह है वैसे ही मुझे उन लोगों की योग्यता में सन्देह है

जो ऐसी विचार सम्बन्धी योजना से वचने का प्रयत्न करते हैं जिसका सम्बन्ध मानव-आचरण, नैतिक नियमों और आदर्शों और आध्यात्मिक मूल्यों से होता है। मैंने जो सामान्य बात कही है उसके विरुद्ध एक व्यक्ति के बयानों का कोई मूल्य नहीं। हम जानते हैं कि कार्य शब्दों से ऊँचा बोलते हैं, और आधुनिक मनोवैज्ञानिकों ने इस ओर हमारा ध्यान ऐसे मानसिक बीमार लोगों की ओर दिलाया है जिन्हें फैसले करने में कठिनाई होती है, क्योंकि कार्य में पथ-प्रदर्शन करने वाले उनके विचारों में विरोध होता है।

सहज-बुद्धि के विचारों में जिनसे अगर हम चाहें तो भी नहीं बच सकते, दूसरे लोगों के अस्तित्व में हमारा विश्वास भी है। यह विश्वास एक आरम्भिक बिन्दु है, जिससे ऐसे विचार जन्म लेते हैं जिन पर आध्यात्मिक निर्णय निर्भर करते हैं। हम जानते हैं कि मामूली अन्तर के सिवाय हमारे सम्बन्धी हमारे ही जैसे हैं। जहाँ तक शारीरिक कार्य, विचार और भावनाओं का सम्बन्ध है वे हमारा अपना प्रतिरूप मालूम होते हैं। सच पूछा जाये तो हम दूसरे लोगों की अँगुलियों पर चलते हैं और दूसरों की भावनाओं को आहित करते हैं। हम यह जानते हैं क्योंकि हमारी अपनी भी अँगुलियाँ हैं जिन पर चला जा सकता है और हमारी भी भावनायें हैं, जो आहित हो सकती हैं। कुछ लोगों में हमारे दूसरों से निकट सम्बन्ध के इस विश्वास का लगाव बहुत अधिक होता है और अपने उद्भव में दूसरे विश्वासों के सदृश है। यह मिलावट से नर्म, दलीलों से कमजोर और अनुभव से दृढ़ हो सकता है। मैंने अपने पिछले भाषण में जिस भारतीय गाइड का ज़िक्र किया है, लगाव की मात्रा का अनुमान उससे हो सकता है। उसे क़ै आ गई जब उसने किसी दूसरे को ऐसा काम करते देखा जिसके कारण उसे क़ै आ सकती थी। मानव-यातना को देख कर मन का खिन्न होना एक आम बात है। दूसरे लोगों की दुख-पीड़ा किसी मात्रा में हम लोगों की अपनी दुख-पीड़ा बन जाती है और सिर्फ उन लोगों को छोड़कर जो मानसिक रूप से बीमार हैं, निजी दुख और पीड़ा से बचना इतना ही स्वयं-सिद्ध प्रमाण है जितना त्रिदिशा संसार को स्वीकार करना। एक आधुनिक मानव की,

'अगर वह न तो कट्टर धार्मिक है और न नास्तिक भौतिकवादी है, अपने जीवन दृष्टिकोण के बारे में कम-से-कम जिम्मेदारी क्या है ? ऐसी सामाजिक व्यवस्था स्थापित करने के लिए जिसमें मानव-आचरण की मान्यताएँ निहित हों, कम-से-कम स्वयं-सिद्ध प्रमाण क्या हैं ? यह ऐसे प्रश्न हैं, जिनका उत्तर सिर्फ प्रत्येक व्यक्ति के समूचे अनुभव ही से दिया जा सकता है, वरना मुश्किल है। क्योंकि अगर मैं दुरुस्त हूँ तो उन विचारों से, जो यहूदी और ईसाई धर्म की परम्परा का सदियों से अविच्छेद अंग रहे हैं, हर एक व्यक्ति को लगाव की मात्रा अलग-अलग होगी। वह लोगों से व्यवहार की जो योजना बनायेगा वह उन मान्यताओं पर होगी जिन्हें वह व्यावहारिक रूप से काम में लाता है। इनमें दूसरे लोगों से उसके निकट सम्बन्ध की मान्यता, उनका उससे शारीरिक सादृश्य, की मान्यता इतनी बुनियादी जान पड़ती है जितना कि एक अनुरूप योजना का एक आवश्यक तत्त्व। उसके लिए ऐसा व्यवहार करना जैसे निष्ठुरता अच्छी बात हो, इतना ही कठिन है जितना मर्दखोरी को अच्छा समझ कर करना। अगर यह सच है तो इससे बहुत से परिणाम निकलते हैं जो आध्यात्मिक मूल्यों के उस राज्य में ले जाते हैं जिसका उल्लेख मैंने अपने पिछले भाषण में अक्सर किया है।

अगर हम पशु-आचरण और मानव-आचरण के बुनियादी फर्क को समझ लें तो वे विचार सार्थक हो जाते हैं जो आध्यात्मिक विकास की किसी भी व्यवस्था में व्यक्त किये जाते हैं। इसी के आधार पर एक मान्यता यह स्थापित होती है कि हमारे इरादों और हमारे प्रत्यक्ष कार्यों का घटनाओं की किसी व्यापक व्यवस्था से सम्बन्धित होने की सम्भावना है। एक आधुनिक मानव जिसकी परवरिश यहूदी-ईसाई धार्मिक परम्परा में हुई है जो "दीवार फाँदकर" भौतिकवादी शिविर में जाये बिना ही एक जीवन-दर्शन का विकास चाहता है, उसके लिए यही कम-से-कम जिम्मेदारी है।

मैं उन कम-से-कम जिम्मेदारियों का उल्लेख करना चाहता हूँ जिन्हें हम वैज्ञानिक के नाते नहीं बल्कि व्यवहारकुशल मनुष्यों के नाते स्वीकार करने के लिए विवश हों। मैं यह बताना चाहता हूँ कि यथार्थ

दुनिया में उसके विश्वास की भाँति ये उसके समूचे व्यक्तित्व में निहित हैं। क्या खाना और क्या नहीं खाना चाहिए की तरह क्या करना और क्या नहीं करना चाहिए में उसके विचारों को कम-से-कम दखल है। यह खोज बहुत ही व्यक्तिवादी ढंग की है इसलिए परिणाम इतने संतुलित नहीं हैं जितने सहज-बुद्धि की दुनिया में चीजों और लोगों के बारे में होते हैं। परिणाम योजना सम्बन्धी विश्वासों के सादृश हैं जिनका उल्लेख मैं पिछले भाषण में कर चुका हूँ। मगर जिन लोगों की सांस्कृतिक पृष्ठ-भूमि एक है उनके लिए जबानी विश्लेषण के बजाय कार्य में परिणाम समान रूप हैं। फिर भी मेरा खयाल है कि जो विचार मैंने व्यक्त किये हैं उनके आधार पर कम-से-कम मान्यताओं की स्थापना हो सकती है। मैं मानता हूँ कि इससे जो जिम्मेदारी आयगी उससे कट्टर ईसाई संतुष्ट नहीं होगा। लेकिन 'एक आध्यात्मिक दुनिया' के शब्दों को अर्थ प्रदान करने के लिए ये मान्यतायें जरूरी हैं और सब धर्मों के लिए साँझा नाम बन सकती हैं।

इन कम-से-कम जिम्मेदारियों की खोज में आधुनिक विज्ञान आधुनिक मानव की कुछ भी सहायता नहीं करता। लेकिन विज्ञान की खोजों से जो लाभ होते हैं वे सिर्फ भौतिक ही नहीं हैं। इसके विपरीत अच्छे समारीटन के हाथ मजबूत करने के लिए जो ऐसा विश्वास रखने वालों को कि मनुष्य सिर्फ सामाजिक जीवन ही नहीं है, उत्साह प्रदान करता है। तीन सौ साल का इतिहास उन सफलताओं का रिकार्ड है जो विचारों के कारण हुई। यह मानव-मस्तिष्क की सृजन-शक्तियों के विकसित होने की कहानी है। प्रतिक्रिया के इस युग में, जबकि अणु-बमों और उद्जन-बमों की धूमधाम है, हमारे लिए आधुनिक समय के इस पहलू पर जोर देना आवश्यक है। अनुभवों और निरीक्षणों से जो नये विचार और धारणायें उत्पन्न हुई जो नये अनुभवों के लिए बहुत ही उपयोगी है, कुछ कम सफलता नहीं है। मध्य युग के बड़े-बड़े गिरजाघरों की भाँति उन्नीसवीं और बीसवीं सदी के वैज्ञानिक सिद्धान्त इस बात के साक्षी हैं कि मानव-मस्तिष्क क्या कुछ कर सकता है। विनम्रता के साथ हम अज्ञान के उस विस्तृत सागर को स्वीकार करते हैं जहाँ सिर्फ प्रयोग-ज्ञान ही हमारा पथ-प्रदर्शक हो सकता है लेकिन भविष्य में मस्तिष्क कहाँ तक

बढ़ सकता है इसकी हम कोई सीमा निश्चित नहीं कर सकते। हमारे कामों में प्रयोगवाद की मात्रा का लगातार कम होना सम्भव भी है और उसका बड़ा महत्त्व भी है। दो शब्दों में यही वह संदेश है जो आधुनिक विज्ञान आधुनिक मानव के लिए लाता है।